बुद्धं शरणं गच्छामि

रत्नाकर पाण्डेय

प्रकाशक
डा० जयगोपाल, शिवगोपाल
निराला साहित्य अवगाहन परिषद
साधना कुटीर
२१ महराबाग, इलाहाबाद ।

मूल्य २।)—

प्रथम संस्करण, १९५६

मुद्रक
गोविन्ददास माहेश्वरी
सन्मार्ग प्रेस, वाराणसी

मुट्ठी भर सत्य

बुद्धकी कहानीने मुझे शुरू बचपनमें ही आकर्षित किया था, और मैं युवा सिद्धार्थकी तरफ खिंचा था। जिसने कि बहुत से अन्तर्द्वन्द्वों, दुःख और यातनाके बाद बुद्धका पद हासिल किया था। एडविन आर्नल्डकी किताब 'लाइट आफ एशिया' मेरी प्रिय पुस्तक बन गयी। बादमें जब मैंने अपने सूबेमें बहुत से दौरे किये, तब मैं बुद्धकी कथासे ताल्लुक रखनेवाली बहुत सी जगहों पर, अपने यात्रामार्ग से हट कर भी, जाना पसन्द करता था। इनमेंसे ज्यादातर मुकाम या तो मेरे ठीक सूबे में हैं या इसके नजदीक हैं। यहीं (नेपालकी सरहद पर) उनका जन्म हुआ। यहीं वह घूमते-फिरते रहे। गयामें, (बिहारमें) उन्होंने बोधि वृक्षके नीचे बैठकर ज्ञान हासिल किया। यहीं उन्होंने अपना पहला उपदेश किया। यहीं वह मरे।

जब मैं उन देशोंमें गया, जहां कि बौद्ध धर्म अब भी जीता जागता और खास धर्म है, तब मैंने जाकर मन्दिरों और मठों को देखा। भिक्खुओं और आम लोगोंसे मिला। यह जाननेकी कोशिश की कि बौद्ध धर्मने जनताके लिए क्या किया। उसने उन पर क्या असर डाला। किस तरहकी छाप उनके दिमागों और चेहरों पर छोड़ी और मौजूदा जिन्दगीकी उन पर क्या प्रतिक्रिया हुई? बहुत कुछ ऐसा था, जिसे मैंने नहीं पसन्द किया। बौद्ध धर्मके बुद्धिवादी नैतिक सिद्धान्तोंपर इतना कूड़ा-करकट जमा हो गया है, इतने कर्मकाण्ड, इतने विधि-विधान और बुद्धकी शिक्षाके बावजूद, इतने आधिभौतिक सिद्धान्त और जादू-टोने तक इकट्ठा हो गये हैं कि क्या कहा

जाय ! बुद्धके सतर्क कर देने पर भी उन्हें ईश्वर माना गया है और उनकी बड़ी बड़ी मूर्तियां बन गयी हैं। जिन्हें मैंने मन्दिरों में तथा अन्य जगहों में, अपने सिरकी उंचाईसे भी ऊपर स्थापित देखा है। मैं अपने मनमें सोचता हूँ कि बुद्ध अपनी इन मूर्तियोंको देखते तो क्या कहते ?

बहुतसे भिक्षु अनपढ़ लोग हैं। बल्कि घमण्डी हैं, क्योंकि वह यह चाहते हैं कि उनके सामने माथा झुकाया जाय। अगर उनके सामने नहीं तो उनके भेसके सामने। लेकिन मैंने बहुत कुछ ऐसा भी देखा, जिसे कि मैंने पसन्द किया। कुछ मठों और उनसे लगे विद्यालयोंमें ध्यान और शान्ति तथा अध्ययन करनेका वातावरण था। बहुतसे भिक्षुओंके चेहरेपर शान्ति और सौम्यता मिली, शांत, दया और तटस्थताका भाव मिला। संसारकी चिन्ताओंसे मुक्ति दिखाई दी। क्या यह सब बातें आजकी दुनियांमें अपनी ठीक जगह रखती हैं या महज उनसे बच निकलनेका एक तरीका है ? क्या इनका जिन्दगीके निरन्तर संघर्षसे इस तरह मेल नहीं हो सकता कि उसके भद्देपनको, उसकी क्रूरताको, उसके हिंसाभावको कम कर सके ?

बौद्ध धर्मका निराशावाद मेरे अपने जिन्दगीके जरिये से मेल नहीं खाता, न जिन्दगी और उसके मसलों से भागनेकी उसकी प्रवृत्ति मेरे अनुकूल पड़ती है। अपने दिमागके किसी छिपे हुए कोनेमें, मैं काफिर [नास्तिक] हूँ। और जिस तरह नास्तिक जिन्दगी और प्रकृति को उमंगके साथ देखता है, उसी तरह मैं भी देखता हूं। जिन्दगीमें जिन संघर्षोंका सामना करना पड़ता है, उनसे घबड़ाता नहीं हूं। जो कुछ मैंने अनुभव किया है, या अपने चारों ओर देखा है, वह चाहे जितना तकलीफ देह और कष्ट पहुंचानेवाला रहा हो, उससे मेरी इस विचार धारामें फरक नहीं पड़ा है।

क्या बौद्ध धर्म निष्क्रियता और निराशावाद सिखाता है ? इस धर्मके अनुयायियोंने यही अर्थ निकाला है लेकिन जब मैं बुद्ध का ध्यान करता हूं तो इस तरहके विचार मेरे मनमें नहीं उठते। न मैं यही समझता हूं कि निष्क्रियता और निराशावादकी बुनियाद पर ठहरे हुए किसी धर्मका आदमियों की इतनी बड़ी संख्या पर, जिसमें काबिल से काबिल लोग हो गये हैं, इतना गहरा असर पड़ सकता है !

बुद्धने अपने उपदेशोंमें धर्मका हवाला नहीं दिया। न ईश्वर या किसी दुनियांका हवाला दिया। वह बुद्धि, तर्क और अनुभव पर भरोसा करते थे और लोगोंसे कहते थे सत्य को अपने मनके भीतर खोजो। ईश्वर या परब्रह्म है या नहीं, इसके बारेमें बुद्धने कुछ नहीं बताया है। न वह इससे इकरार करते हैं, न इनकार करते हैं। जहां जानकारी मुमकिन नहीं, वहां हमें अपना फैसला नहीं देना चाहिये। एक सवालके जवाबमें बुद्धने यह कहा था—'अगर परब्रह्मसे मतलब है किसी ऐसी चीजसे, जिसका सभी जानी हुई चीजोंसे कोई सम्बन्ध नहीं तो किसी तर्क से उसका अस्तित्व या वजूद सिद्ध नहीं किया जा सकता। यह हम कैसे जान सकते हैं कि दूसरी चीजों से असम्बद्ध चीज कोई है भी या नहीं ? यह सारा विश्व -'इसे हम जिस रूपमें जानते हैं'—सम्बन्धोंका एक सिलसिला है। हम कोई ऐसी चीज नहीं जानते जो बिना सम्बन्धके है या हो सकती है।' इसलिए हमें अपनेको उन चीजों तक महदूद रखना चाहिये, जिनका हम अनुभव कर सकते हैं और जिनके बारेमें हमें पक्की जानकारी है।

इसी तरह बुद्धने आत्माके अस्तित्वके बारेमें भी कुछ नहीं कहा है। वह उस सवालमें पड़ना ही नहीं चाहते। लेकिन यह बहुत ही अचरजकी बात है। क्योंकि उस जमानेमें हिन्दुस्ता-

नियोंके दिमागमें आत्मा, परमात्मा, एकेश्वरवाद, अद्वैतवाद, और आधिभौतिक सिद्धान्त-समाये रहते थे। बुद्धने सभी तरह के आधिभौतिकवादों से अपने विचारोंको हटाये रखा, लेकिन प्रकृति के नियमके स्थायित्वमें और एक व्यापक हेतुवादमें उनका विश्वास है।

हम अनुभवकी इस दुनियां में शब्दों या भाषाका इस्तेमाल करते हैं और कहते हैं कि 'यह है' या 'यह नहीं है'। लेकिन जब हम सचाई वस्तुओं के भीतर पैठते हैं तो इनमेंसे एक भी, सम्भव है, सही न हो और जो कुछ हो रहा है, उसको बयान करनेमें हमारी भाषा ही न काफी हो। सत्य 'है' और 'नहीं है' के बीच में या इनसे परे कहीं भी हो सकता है। नदी बराबर बहती है और हर-लमहे एक-सी मालूम होती है, फिर भी पानी बराबर तब्दील होता रहता है। इसी तरह आग है। लौ जलती रहती है और अपना आकार भी कायम रखती है, फिर भी वही लौ हमेशा नहीं रहती, बल्कि क्षण-क्षणमें बदलती रहती है। इसी तरह जिन्दगी बराबर बदलती रहती है और अपने सभी रूपोंमें वह एक धारा की तरह है, जिसे हम 'होने की प्रक्रिया' कह सकते हैं। असलियत कोई ऐसी चीज नहीं है, जो कायम रहने वाली और न बदलने वाली हो, बल्कि वह एक रौशन ताकत है, जिसमें तेजी है और रफ्तार है और जो नतीजोंका एक सिलसिला है। 'समयकी धारणा महज एक ख्याल है, जो किसी घटनाके आधार पर व्यवहारके लिए बना लिया गया है।' हम यह नहीं कह सकते कि कोई एक चीज किसी दूसरी चीजका कारण है क्योंकि—'होनेकी प्रक्रिया' में कोई अंश ऐसा नहीं है, जो स्थायी हो या बदलनेवाला न हो। किसी वस्तुका तत्व, उसमें निहित नियम में है जो कि उसे किसी दूसरी कही जानेवाली वस्तुसे जोड़ता है। हमारा शरीर और

आत्मा नया नया बदलता रहता है, उसका अन्त हो जाता है और उसकी जगह कोई दूसरी चीज, जो वैसी ही होती है, लेकिन उससे मुख्तलिफ होती है, वह जगह ले लेती है और फिर वह भी चली जाती है। एक मानी में हम हरदम मर रहे हैं और हरदम फिरसे जन्म ले रहे हैं और यह सिलसिला एक अटूट अस्तित्व का आभास देता है। यह 'एक सतत परिवर्तन होता अस्तित्वका सिलसिला' है। हर चीज बस एक बहाव, गति और परिवर्तन है।

हम लोग भौतिक घटनाओंको एक बंधे हुये ढंगसे देखने और उनकी तशरीह करनेके इतने आदी हो गये हैं कि हमारे दिमागके लिए यह सब समझ सकना मुश्किल हो गया है। लेकिन यह बहुत मार्केकी बात है कि बुद्धका यह फिलसफा (दर्शन, विचार) हमें आज कलके पदार्थ ज्ञानकी धाराओं और दार्शनिक विचारोंके निकट ले आता है।

बुद्धका ढंग मनोवैज्ञानिक विश्लेषणका ढंग था और यहां भी यह देखकर आश्चर्य होता है कि आजके विज्ञानकी नयी से नयी खोजोंके कितने निकट उनकी सूझ थी। आदमी की जिन्दगी पर विचार और जांच बिना किसी स्थायी आत्मा के लिहाजके होती है। क्यों कि अगर किसी ऐसी आत्माकी सत्ता है भी तो वह हमारी समझसे परे है। मनको शरीरका अंग, मानसिक शक्तियोंकी एक मिलावट समझा जाता था। इस तरहसे व्यक्ति मानसिक स्थितियोंकी एक ठठरी बन जाता है। 'आत्मा विचारोंका महज एक प्रवाह है।' 'जो कुछ भी हमने सोचा है, इसका नतीजा है।'

जिन्दगीमें जो दुख और कष्ट है, उस पर जोर दिया गया है। बुद्धने जिन 'चार बड़े सत्योंका बखान किया है, उनमें दुख, उसके कारण, उसे खतम करनेकी सम्भावना और उसके

लिए उपाय बताये गये हैं। बुद्धने अपने चेलोंको बताया है – 'जब कि तुमने युगोंके दौरमें इस (दुख) का अनुभव किया, तुम्हारी आँखोंसे इतना पानी बहा है, जब तुम इस (जिन्दगी की) यात्रामें भटके हो और तुमने शोक किया है या तुम रोये हो, क्योंकि जिस चीजसे तुम नफरत करते रहे हो, वह तुम्हें मिली है, और जिस चीजकी तुम इच्छा करते रहे हो, वह तुम्हें नहीं मिली है, वह सब तुम्हारे आँसुओंका पानी चारों बड़े समुद्रोंके पानी से ज्यादा रहा है।

ज्ञान पड़ता है कि बुद्धकी वह कल्पना, जिसे कि अनगिनत प्रेमपूर्ण हाथोंने, पत्थर, संगममर और कांसेमें गढ़कर साकार किया है, हिन्दुस्तानियोंके विचारों और भावोंको प्रतीक है या कमसे कम उसके एक जिन्दा पहलूका प्रतीक है। कमलके फूलपर शान्त और धीर, वासनाओं और इच्छाओंसे परे, इस दुनियाके तूफान और कशमकशसे दूर, वह इतने ऊपर, इतने दूर मालूम पड़ते हैं कि जैसे पहुँचके बाहर हों। लेकिन जब फिर उन्हें देखते हैं, तो उस शान्त, अडिग आकृतिके पीछे एक आवेग और मनोभाव ज्ञान पड़ता है जो अनोखा है और उन आवेगों और मनोभावोंसे, जिनसे हम परिचित हैं, ज्यादा जोरदार है। उनकी आँखें मुदी हैं, लेकिन चेतनाकी कोई शक्ति उनके भीतरसे दिखाई देती है और शरीरमें कोई जीवनी शक्ति भरी हुई जान पड़ती है। उनकी वाणी हमारे कानोंमें धीमे स्वरमें कुछ कहती जान पड़ती है और यह बताती है कि हमें संघर्षसे भागना नहीं चाहिये। बल्कि धीर नेत्रोंसे उसका सामना करना चाहिये और जिन्दगीमें विकास, तरक्की तथा बड़े-बड़े अवसरों को देखना चाहिये।

सदाकी तरह आज भी व्यक्तित्वका असर है। और

जिस आदमीने इन्सानके विचारोंपर अपनी वह छाप डाली, जिसकी कल्पनामें आज भी हम कोई जीती-जागती थर्राहट पैदा करनेवाली चीज पाते हैं तो यह माननेको मजबूर होते हैं कि वह आदमी बहुत ही अद्भुत आदमी रहा होगा। उस कौम और उस जातिमें, जो कि ऐसे विशाल नमूने पेश कर सकती है। अक्लमन्दी और भीतरी ताकतका कैसा गहरा सम्बन्ध होगा।

....जो लोग ब्रह्मज्ञानकी बारीकियोंमें उलझे हुए थे, उनके लिए बुद्धका सन्देश पुराना होते हुए भी नया और मौलिक था। इसने विचारशील लोगोंकी कल्पना पर कब्जा कर लिया। यह लोगोंके दिलोंके भीतर गहरा पैठ गया। बुद्धने अपने चेलोंसे कहा था—'सभी देशोंमें जाओ और इस धर्मका प्रचार करो। उनसे कहो कि गरीब और दीन, अमीर और कुलीन, सब एक हैं और इस धर्ममें सभी जाति इस तरह आकर मिल जाती हैं, जिस तरह नदी समुद्रमें जाकर मिलती है। उनका सन्देश सभीके लिए दया और प्रेमका सन्देश था। क्योंकि 'इस दुनियांमें नफरतका अन्त नफरत से नहीं हो सकता। नफरत प्रेम करनेसे ही जायगी' और 'आदमीको चाहिये कि गुस्सेको दयाके जरिये और बुराई को भलाईके जरिये जीते।'

भले काम करनेका और अपने ऊपर संयम रखनेका का यह आदर्श था—'आदमी लड़ाईमें हजार आदमियों पर विजय हासिल कर सकता है, लेकिन जो अपने ऊपर विजय पाता है, वही सबसे बड़ा विजयी है।' पापीको भी निन्दा उचित नहीं, क्योंकि 'जो पापियोंसे जानबूझ कर कड़े शब्द कहता है, वह मानो उनके पापरूपी घावपर नमक छिड़कता है।' दूसरेके ऊपर विजय पाना ही दुखका कारण होता

है—'विजय नफरत उपजाती है। क्योंकि विजित दुखी होता है।'

दुखकी इस हालतका अन्त कर देनेसे 'निर्वाण' हासिल हो सकता है। 'निर्वाण' है क्या? इसके बारेमें लोगोंमें मतभेद रहा है। क्योंकि एक ऐसी हालतका जो कि अनुभव से परे है, किस तरहसे हमारे महदूद दिमागोंकी भाषा में बयान हो सकता है। कुछ लोग कहते हैं कि यह केवल सिफर हो जाना है। बुझ जाना है। लेकिन बुद्धने—कहा जाता है कि—इससे इनकार किया है और बताया है कि यह अत्यधिक क्रियाशीलताकी अवस्था है। न कि अपने मिट जाने की। लेकिन इसका विवेचन केवल नकारात्मक शब्दोंमें किया जा सकता है।

बुद्धका बताया हुआ रास्ता मध्यम मार्ग है। यह अपने को यातना देने और विलासमें डुबा देनेके बीचका रास्ता है। शरीरको तकलीफ देनेके अनुभवके बाद उन्होंने कहा है कि जो आदमी अपनी ताकत खो बैठता है, वह ठीक रास्ते पर नहीं चल सकता। यह मध्यममार्ग आर्योंके अष्टांग मार्ग के रूपमें प्रसिद्ध हुआ। इसके अङ्ग हैं—ठीक विश्वास, ठीक आकांक्षाएँ, ठीक वचन, ठीक कर्म, ठीक आचार, ठीक प्रयत्न, ठीक स्मृति और ठीक आनन्द। इसमें अपने विकासका सवाल है। किसीको कुचलनेका नहीं। अगर आदमी इस दशामें अपना विकास करनेमें कामयाब होता है तो उसके लिए कभी हार नहीं—'जिसने अपनेको वसमें कर लिया है, उसकी जीतको देवता भी हारमें नहीं बदल सकते।'

बुद्धने अपने चेलोंको वह बातें बतलाया जो उनके विचारानुसार वह समझ सकते थे और जिसपर आचरण कर सकते थे। उनके उपदेशोंका यह मकसद नहीं था कि जो

कुछ भी है, उसकी तरफदारी की जाय, जो कुछ भी है, उसका पूरा-पूरा दिग्दर्शन कराया जाय। कहा जाता है कि एक बार बुद्धने अपने हाथमें कुछ सूखी पत्तियाँ लेकर अपने प्रिय शिष्य आनन्दसे पूछा कि हाथकी इन पत्तियोंके अलावा क्या और भी कहीं पत्तियाँ हैं?' आनन्दने जवाब दिया— 'पतझड़की पत्तियाँ सभी तरफ गिर रही हैं और वह इतनी हैं कि उनकी गिनती नहीं हो सकती।' तब बुद्धने कहा— 'इसी तरह मैंने तुम्हें मुट्ठी भर सत्य दिये हैं, लेकिन इनके अलावा हजारों-लाखों सत्य और हैं, जिनकी गिनती नहीं हो सकती?'

—जवाहरलाल नेहरू

हिन्दी जगत के लिए लेखक की दो गौरवमय देन

रस-रसिक महाकवि विहारी के

जीवन का प्रथम हिन्दी औपन्यासिक रेखांकन

विहारी

तथा

भारतीय विधवा समस्या पर

लिखा गया अपने ढंग का अकेला उपन्यास

सान्त्वना

शीघ्र प्रकाशित हो रही है

अपने पूज्य गुरू

युग के सर्व श्रेष्ठ नाटककार

पं० लक्ष्मी नारायण मिश्र

को

सादर

कस्मै देवाय हविषा विधेम !

श्री रत्नाकर पाण्डेयकी प्रस्तुत रचनाका स्वागत कई दृष्टियोंसे किया जायगा। इसमें भगवान् बुद्धकी 'कथा' वार्ताकी शैलीमें प्रस्तुत की गयी है। कुछ विदेशी यात्रियोंको सरल, सरस और रोचक ढंगसे यह कथा सुनायी गयी है। उनका औत्सुक्य और उनकी जिज्ञासा भी इसमें सहज स्वाभाविक रूपमें प्रस्फुटित हुई है। हिन्दीके लिए यह शैली नयी है। इस शैलीमें अभी केवल कुछ गिनी-गिनायी रचनाएँ सामने आयी हैं। हिन्दीके लिए भलेही यह शैली नयी हो, पर भारतीय साहित्यके लिए यह नयी चीज नहीं है। संस्कृत साहित्यमें किसी समय यह शैली सर्वाधिक लोकप्रिय रही है। पुस्तकोंके प्रकाशनका प्रबन्ध न रहनेके कारण कथावार्ताकी यह शैली अत्यधिक विकसित हो गयी थी। इसका विकास सन्तगोष्ठी, कथागोष्ठी आदि तक ही सीमित रहा। महाकवि बाणभट्टने अपने 'हर्षचरित' की रचना इसी शैलीमें की है। इस शैलीका चरम-विकास 'हर्षचरित'में देखा जा सकता है। हर्षचरितकी रचना भी कुछ अन्तरङ्ग लोगोंके अनुरोध पर की गयी है। इसी शैलीको आजकल 'रिपोर्ताज' कहा जाने लगा है और यह माना जाने लगा है कि यह विदेशी शैली है और भारतको विदेशी साहित्यकी देन है। संस्कृत साहित्यका अध्ययन समाप्त हो जानेके कारण आज अपनी निधि को विदेशी देन स्वीकार किया जाने लगा है। प्रसन्नताकी बात यह है कि लोगोंका यह भ्रम अब दूर होने लगा है और संस्कृत साहित्यकी ओर झुकाव होने लगा है।

प्रस्तुत रचना कैसी है, यह बतलाना पाठकोंका काम है। रचनाके गुण और दोषकी विवेचना प्रस्तुत करना, उनकी क्षमता पर अविश्वास

प्रकट करना होगा। पाठक अपने विवेकसे जो निर्णय करेंगे, वही उचित और समीचीन होगा। उनपर अपना निर्णय या मत लादना न अभीष्ट है, न इसे उचित ही माना जा सकता है। पुस्तकमें मुद्रण सम्बन्धी त्रुटियोंकी परख भी वह स्वयं कर लेंगे। सुहृद समालोचकोंको भी नीर क्षीर विवेकमें विशेष कठिनाई नहीं होगी। इस शैलीमें अभी गिनी-गिनाई रचनाएं सामने आयी हैं। गिने-गिनाये रचनाकारोंमें और गिनी-गिनायी रचनाओंमें प्रस्तुत रचनाका मूल्याङ्कन और लेखकका स्थान निर्धारण दुरूह नहीं होगा। विचारणीय प्रश्न केवल यह है कि लेखक अपनी शैलीमें कहाँतक सफल रहा है। यदि लेखककी लेखनशैली पाठकोंको आकृष्ट करती है तो इसे रोचक औरसफल मानना ही होगा।

'बनारस' कार्यालय — 'गहरवार'

बुद्धपूर्णिमा, १९५६,

अनुक्रम

बुद्धं शरणं गच्छामि

धम्मं शरणं गच्छामि

संघं शरणं गच्छामि

अपूर्व बुद्ध महोत्सव

रात के ठीक बारह बारह बजे हैं।

अभी अभी पास के घंटाघर से टन् टन् के बारह घंटे कुछ ही देर पहले बजे हैं। आज २३ मई ५६ वैसाख चतुर्दशी की यह रात बीत चली। नया प्रभात शीघ्र ही आने वाला है। मैं इस समय इस होटल के छोटे, आधुनिकता के रँग में रँगे कमरे में अकेला लेटा हुआ हूं। नींद भी नहीं आरही है। नींद का क्या दोष। डेढ़ बजे रात मुझे गाड़ी पकड़नी है। तैयार हो जाऊँ। कुछ पहले पहुँचना अच्छा होगा। इस मनहूस वातावरण से जी भी ऊब गया है। स्टेशन पर ही चलूँ। वहाँ के चहल-पहल से मन को कुछ आराम मिलेगा।

यह प्रयाग स्टेशन है। प्लेट फार्म बिजली के बल्बों के गाढ़े श्वेत प्रकाश में चमक रहा है। भीड़ अधिक नहीं है। अभी गाड़ी आने में लगभग बीस मिनट की देर है। इस ऊँचे छाजन से ढके प्लेटफार्म के सख्त पत्थरों पर मैं धीरे-धीरे चप्पलों को घसीटता हुआ एक छोर से दूसरे छोर तक घूम आ रहा हूँ। मेरे मन में हलके धूएँ की भाँति अनेक भावनायें उठ रही हैं। मैं आज अपने प्रिय मित्र गोपेश की शादी से लौट कर आया हूं। गोपेश मुझसे नाराज हो गया होगा। मुझे आज

अवश्य ही वाराणसी पहुँचना है। बारात की विदाई भी नहीं हुई थी। तभी मैं गोपेश की इच्छा न होते हुए भी उससे आज्ञा लेकर तड़के ही चल पड़ा। देहात के दुर्गम मार्ग, कच्चे-रास्ते से ११ मील पैदल चल इलाहाबाद दोपहर में पहुँचा हूँ। सायंकाल का खाना होटल में खाकर कुछ देर पहले आराम करने के लिए एक एकांत कमरे में लेटा, पर नींद न आयी। मुझे तो वाराणसी पहुँचने की चिंता लगी है। पर अब मैं समय से पहुँच सकूँगा।

दर्द से पैर टूटा जा रहा है। जीवन में पहली बार इतनी कष्टदायी पैदल यात्रा करनी पड़ी है। देहात में कोई भी सवारी न मिली।

सिगनल गिरा। अब शीघ्र ही गाड़ी आने वाली है। रेलवे लाइन के मध्य से किसी अनन्त स्थान से प्रकाश की किरणों का आगमन प्रारम्भ हो गया। प्रकाश धीरे-धीरे तीव्र होता जा रहा है। कानों को स्पष्ट गाड़ी के आने का शब्द सुनायी पड़ रहा है। यह तीव्र प्रकाश ज्योति इन्जन के लाइट की है। स्टेशन पर कोलाहल का वातावरण हो गया। छुक-छुक् करती गाड़ी भी प्लेट फार्म से आ लगी। कुछ उतरे कुछ चढ़े। मैं एक द्वितीय श्रेणी के कम्पार्टमेंट में आकर बैठ गया हूँ। ऊपर वाली बर्थ खाली है। बिस्तर लगा लूँ। चलकर गाड़ी ने प्लेट फार्म धीरे से छोड़ दिया। मैं भी अब अपने बिस्तर पर हूँ। इस कम्पार्टमेण्ट में केवल जागरण और शयन के मध्य दो व्यक्ति ऊँघ रहे हैं। मैं मासिक पत्र के पृष्ठ उलट उसके किसी पृष्ठ में अपना ध्यान गड़ाने की सोच रहा हूँ। इसी बीच नीचे के बर्थ पर सोया व्यक्ति मधुर शब्द में बोला "आप कहाँ जाँयगा ?"

उस पत्र को एक ओर रखते हुए मैंने धीमे शब्दों में जवाब दिया, "मुझे वाराणसी जाना है।"

"वारानसी, बरानसी के पास सारनाथ हय।" ऊपर वाली सीट पर लेटे दूसरे व्यक्ति ने अपनी टूटी फूटी हिन्दी में बोलने का प्रयास किया। "हम अभी कितना दूर में वहाँ पहुँच पायेगा।"

मैंने कहा, "बस यही दो ढाई घण्टे में।"

मेरे मन में अनेक भावनाओं का अपूर्व सामांजस्य उपस्थित हो गया। मैं मन ही मन सोच रहा था। मैं उस देहात से भगवान बुद्ध के पवित्र महोत्सव में सम्मिलित होने के लिए अपने आवास वाराणसी जा रहा हूँ। वहाँ बारात में मेरे आगमन से लोग रुष्ट हो गए होंगे। ये महा पुरुष धन्य हैं, जो हजारों मील दूर, सागर पार से हमारे देश में अपने आराध्य देव की प्रतिमा तथा अवशेषों के दर्शन के लिए आए हैं। तथागत की प्रेम मूर्ति इनके हृदय में अपना स्थान बना गयी है। तभी न करोड़ों की संख्या में विदेशवासी उनके अनुयायी हैं वास्तव में वे महान थे। इनकी कीर्ति जब तक संसार है तब तक सर्वोपरि रहेगी। प्रभात की पहली किरण के साथ ही तथागत के महा महोत्सव का पवित्र आयोजन है। सम्पूर्ण भारत ही क्यों दुनिया के सभी बौद्ध स्थानों पर यह पर्व मनाया जायगा। ये विदेश के हमारे बन्धु भी तो इसी निमित्त हमारे देश में पधारे हैं। ऐसी ही प्रबुद्ध सिद्धार्थ के सम्बन्ध में भावनायें एक-एक कर मेरे मन में उठ रहीं थीं। गाड़ी अपनी अबाध गति से बढ़ती चली जा रही थी। आँखों को नींद न थी। अब शीघ्र ही वाराणसी हम पहुँच पायेंगे।

मैंने कहा "कल वहाँ बहुत बड़ा उत्सव है। भगवान बुद्ध महोत्सव ! क्या आप लोग वहाँ जा रहे हैं।"

"जी हाँ। हम दोनों का वहाँ जाना है।" अपने आप परिचय देते हुए उनमें से एक व्यक्ति बोला "बरमा से हम आया है। भगवान बुद्ध अपना शिक्षा इस सारनाथ में पहला-पहल सुनाया था। उस जगह को देखना हम चाहता है।"

उनकी बातों से मुझे पहिले ही मालूम हो गया था कि वे बौद्ध धर्म के अनुयायी हैं ! कम्पार्टमेन्ट में जल रहे हलके बल्ब के नीले प्रकाश में मैंने उनकी वेश-भूषा का निरीक्षण प्रारम्भ किया। दोनों के सिर के बाल बिल्कुल घुटे हुए थे। उनके शरीर में गेरुये रंग का बेसकीमती सिल्क का वस्त्र लिपटा हुआ था। दोनों बौद्ध भिक्षु थे। उनके चप्पल अजीब माडल के थे। देखने से ऐसा ज्ञान होता था कि भगवान तथागत के वे सच्चे अनुयायी हैं। यहाँ तक की उनके बिस्तर भी गेरुये रंग के ही थे। वे पीले गोरे थे। शरीर की लम्बाई अधिक न थी। सामान्य कद था। उनकी नाकें चिपटी थीं। वे एक अपूर्व प्रसन्नता की शीघ्र प्राप्ति का अनुभव कर अत्यन्त प्रसन्न दिखाई पड़ रहे थे। उनके मुख पर अपूर्व उत्साह की एक अलौकिक झलक मुझे देखने को मिली।"

मैंने पूछा "इधर आप लोग कहाँ गये थे।" "हम भारत के अच्छे-अच्छे जगह घूम कर देख रहे हैं। ताजमहल देखने का लिए हम गया से आगरा गया रहे। हम इस ट्रेन से अब वारानसी पहुँचेंगे।" मैंने देखा अब बनारस कैंट स्टेशन निकट ही था।

ठीक पाँच बजे ट्रेन बनारस कैंट प्लेटफार्म पर आ लगी। अपना

बिस्तर और समान मैंने पहले ही से समेट लिया था। उन दोनों व्यक्तियों को नमस्ते कर मैं गाड़ी से उतर पड़ा।

स्टेशन से बाहर निकल मैं, रिक्शे से घर की ओर चला। भोर का अंतिम तारा आकाश में धूँधलापन लिए टिमटिमा रहा था! प्रकाश की एकाध किरणें निकल आयी थीं। अब सबेरा हो रहा था। प्रभात की शीतल सुरभित वायु दिग-दिगन्त में परिमल बिखेर रही थी। उस मंद वायु के झोंके शरीर में नवीन रक्त का संचार कर रहे थे। रिक्सा अबाध गति से घर की ओर बढ़ता चला जा रहा था। मेरे हाथ में किसी दैनिक के बुद्ध विशेषांक की प्रति थी। उसके मुख पृष्ठ पर महामानव निराला की भगवान बुद्ध के प्रति लिखित यह कविता मैं धीरे-धीरे गुन-गुना रहा था।

आज सभ्यता के वैज्ञानिक जड़ विकास पर
गर्वित विश्व नष्ट होने की ओर अग्रसर
स्पष्ट दीख रहा; सुख के लिए खिलौना जैसे
बने हुए वैज्ञानिक साधन; केवल पैसे—
आज लक्ष्य में मानव के; स्थल-जल-अंबर
रेल तार बिजली जहाज नभ-यानों से भर
दर्प कर रहे मानव, वर्ग से वर्गगण—
भिड़े राष्ट्र से राष्ट्र, स्वार्थ से स्वार्थ विचक्षण।
हँसते हैं जड़वाद-ग्रस्त प्रेत ज्यों परस्पर,
विकृत नयन मुख कहते हुए अतीत भयंकर,
था मानव के लिए, पतित था वहाँ विश्वमन,
अपट अशिक्षित वन्य, हमारे रहे बंधु-गण;

नहीं वहाँ या कहीं आज का मुक्त प्राण यह,
तर्क सिद्ध है, स्वप्न एक है विनिर्वाण यह।
वहाँ बिना कुछ कहे, सत्य-वाणी के मंदिर
जैसे उतरे थे तुम, उतर रहे हो फिर-फिर
मानव के मन में जैसे जीवन में निश्चित
विमुक्त भोग से, राज कुंवर त्याग कर स्वंस्थित
एक मात्र सत्य के लिए, रूढ़ि से विमुक्त, रत
कठिन तपस्या में, पहुँचे लक्ष्य को तथागत!
फूटी ज्योति, विश्व में मानव हुए सम्मिलित,
धीरे-धीरे हुए विरोधी भाव तिरोहित;—
भिन्न रूप से भिन्न-भिन्न धर्मों में संचित
हुए मात्र मानव न रहे करुणा से वंचित;—
फूटे शत-शत उत्स सहज मानवता जलके
यहाँ वहाँ पृथ्वी के सब देशों में छलके;—
छलके, बलके, पंकिल भौतिक रूप अदर्शित
हुए तुम्हीं से, हुई तुम्हीं से ज्योति प्रदर्शित।

\+ + +

—मैं आगे कुछ सोचने ही वाला था तब तक रिक्शा आकर घर के पास रुका। मैं उतर पड़ा। मैं अब घर पर आ गया। मुझे प्रसन्नता है कि मैं समय से पहुँच सका! मैं तथागत के पवित्र अपूर्व पर्व में पूर्ण रूप से सम्मिलित हो सकूँगा! इसके लिए मैं भगवान को कोटिशः धन्यवाद देता हूँ।

\+ + +

६ बजे मैं सारनाथ पहुँचा। आज सारनाथ एक नवीन वातावरण का केन्द्र बन गया था। चारों ओर अपार जन समूह एकत्र था। हजारों की संख्या में विदेशी बौद्ध भिक्षु अपने आकर्षक वेश भूषा में तथागत के पवित्र मंगलमय पावन पर्व में सम्मिलित हो रहे थे। मेरे ड्राइवर रघुनाथ ने गाड़ी को मोटर स्टैण्ड पर खड़ा कर दिया। मैं भी आयोजन स्थल पर पहुँचा। आज जीवन में मैंने पहली बार सारनाथ को, जो एक युग से तथागत के शांतिदायक मंगलमय प्रथम संदेश का साक्षी है इस उत्फुल्ल वातारण में विहसते हुए देखा। सारनाथ प्रबुद्ध बुद्ध की मंगल गाथा के सुमधुर गीतों से गुंजरित हो रहा था। उषा काल में २५ हजारवाँ बुद्ध महोत्सव प्रारम्भ हुआ। सम्मिलित कंठों से निकली भगवान बुद्ध की जयध्वनि सारनाथ के विशिष्ट अवशेषों और खँडहरों से टकराकर आकाश को उद्घोषित कर रही थी। इस पवित्र स्थल पर स्थिति सभी प्राचीन अवशेष तथा भगवान बुद्ध के प्रथम शांति उपदेश स्थल का स्मरण चिह्न धमेक स्तूप जो अपने गर्वित मस्तक को नील गगन में उच्च किए यह सन्देश सुना रहा है कि मैं वर्षों की सफल साधना के परिमाण स्वरूप प्राप्त भगवान बुद्ध के प्रथम शान्ति उपदेश स्थल का स्मरण चिह्न हूँ, आज अपने आराध्य देव के पावन पवित्र चरणों पर अपने सहयोगी अन्य अवशेषों सहित झुकता हुआ प्रतीत हो रहा था। बौद्ध भिक्षु पवित्र स्तूप की प्रदक्षिणा कर कृत-कृत्य हो रहे थे। आज वे फूले न समा रहे थे, मेरे एक परिचित भिक्षु ने बताया कि इस सुअवसर पर लंका, श्याम- बर्मा, चीन, तिब्बत, रूस, जापान आदि देशों के प्रख्यात बौद्ध भिक्षु सैकड़ों की संख्या में यहाँ इस पावन महोत्सव में सम्मिलित होने के लिये आये हैं।

धीरे-धीरे समय बीता। ठीक आठ बजे पावन वेला में भगवान बुद्ध के पूजन का आयोजन किया गया था। इस पूजन पीठिका को गोलाई के घेरे में घेर एक मेला सा लगाया गया था। सभी बौद्ध भिक्षु एकत्र थे। सविधि पूजन आरम्भ हुआ। भीड़ इतनी अधिक हो गई थी कि पूजन दृश्यों को देखना कठिन हो गया। फिर भी धूप दीप की सुगन्धित वायु से सारा वातावरण सुगन्धिमय हो गया था। मैंने मन ही मन तथागत को सच्चे हृदय से श्रद्धानत हो प्रणाम किया।

मैं अन्य स्थानों की नवीनता का निरीक्षण करने के लिए आगे बढ़ा। स्तूप के पूर्वी ओर स्थित मूलगंध कुटी विहार के मन्दिर के चारो ओर एक नया बाग लगाया गया था। छटे हुए दूब इस तरह मन्दिर के चारो ओर बिखरे हुए थे मानों हलका मखमली शाल जमीन पर बिछा दिया गया हो। दूब के मध्य में अनेक छोटे-छोटे आकर्षक पौधे एक कतार में लगाए गए थे। मालूम होता था कि मखमली साल के ये बेलबूटे हैं। परिचर्मा-बाग में बीचो-बीच बांस के पेड़ों की सघनता देखते ही बनती थी।

उत्तर तरफ एक नवीन मृगदाव का निर्माण किया गया था। प्रबुद्ध बुद्ध जब इस स्थान पर पधारे थे उस समय यहाँ निर्भीक हो मृगगण कानन में मद मस्त हो विचरण करते थे। वे निर्भीक थे। उन्हें किसी का भय नहीं था।

मृगदाव एक विशाल घेरे में बनाया गया था। घेरा छोटी-छोटी छिद्र वाली जाली से घेरा गया था। इसी घेरे के अन्दर घास उगी हुई थी। बीच में बांसों के दो एक सघन वृक्ष भी लगाए गए थे। कई मृग उसी घेरे के अन्दर रखे गए थे। वे कल्लोल कर रहे थे। दर्शकों

के लिए वे मनोरंजन के साधन थे। उस घेरे के दक्षिणी ओर एक सकरी विस्तृत फैली हुई पक्की लम्बी नहर बनायी गयी थी, उस नहर की लाल रङ्ग से निर्मित भित्ति अत्यन्त आकर्षक थी। उसमें शीतल जल भरा हुआ था। पवन जब बहता तब उस नहर के जल की लहरें ठीक उसी प्रकार उठने लगती, जिस प्रकार कोई छोटा बालक खिलवाड़ के लिए भरे कटोरे के जल फूंकता है। दर्शकों के लिए एक यह सुन्दर आकर्षण था। मृगदाव के पूर्वी ओर बालकों के खेलने के लिए झूले बनाये गए थे। विहँसते पुष्पों की भांति बच्चे प्रसन्न होकर उस पर झूलते, तथा अन्य खेलों में निमग्न हो खेलते। उसके पास ही एक कोने में नए गोल २५ फिट ऊँची टंकी का निर्माण हुआ था। उस टंकी में जल भी भरा था। ऊपर जाने के लिए सीढ़ियाँ बनी थी। यह टंकी इतने मनमोहक रंग में रंगी गयी थी जैसे कोई मन्दिर हो। इस पर चढ़ कर सारनाथ के ध्वस्त अवशेषों को दूर से देखा जा सकता था। जो आज न जाने किस खुशी में फूले न समाते थे। उनका एक मात्र आवरण हलका हरे दूब थे।

मैं मूलगंध कुटी विहार के मन्दिर में भगवान तथागत का दर्शन कर पुनः महोत्सव,पांडाल में जाना चाहता था। उसी निमित्त में मंदिर के बाहरी सीढ़ियों से होता हुआ भीतर चला। बाहर लटके विशाल-काय घंटे को दर्शक बजाते। घंटे का शब्द शीतल कटु लग रहा था। मैंने भी धीरे से रेशमी डोर में बंधे लकड़ी के लम्बे कुंदे को ढकेला उसने घंटे से टकराकर टन्..न्—न—न् का घोष गुंजारित किया। यह स्वर अनन्त से जाकर टकराया और पुनः उसकी प्रतिध्वनि लौटकर आयी। मेरे अन्तर्हृदय से "बुद्धंशरणं गच्छामि" का स्वर निकला।

दोनों एक साथ ही जाकर अनन्त में विलीन हो गए। मैं प्रमुख द्वार से मंदिर में आया। सामने भगवान बुद्ध की धर्म चक्रप्रवर्तन मुद्रा में स्थित मूर्ति से दीप्ति बिखर रही थी। श्रद्धानत हो मैंने दंडवत किया। पुनः विनीत स्वर में आराध्यदेव की आराधना कर तन, मन को मैंने शुचि किया। आज मुझे इस मंदिर के जापानी कलाकार की भाग्यशाली तूलिका से निर्मित भगवान बुद्ध के जीवन सम्बन्धी पावन चित्र नवीन प्रतीत हो रहे थे। उनसे एक ज्योति फूट रही थी। ये कलाकार की कल्पना के साकार वरदान प्रतीत हो रहे थे। उनको देख ऐसा ज्ञात होता था कि भित्ति पर अंकित चित्र अब बोलने ही वाले हैं। पर न जानें क्यों मौन साधे हुए हैं ! होगा कोई कारण !

मंदिर से अब लौट कर मैं पांडाल में आया। यहाँ पर महोत्सव का कार्य प्रारम्भ होने ही वाला था। पूरब की ओर विशाल पांडाल तना था। पचीसों हजार व्यक्ति एक साथ इस पांडाल में आराम से बैठ सकते थे। उत्तर की ओर विशाल मंच बना था। मंच अत्यन्त आकर्षक ढंग से सजाया गया था। धीरे-धीरे लोग आकर बैठने लगे। नगर के सभी उच्च अधिकारी प्रबन्ध में व्यस्त थे। पांडाल विशिष्ट आमंत्रित व्यक्तियों तथा दर्शकों से पूर्ण रूप से भरा था। मंच की सजावट देखने योग्य थी।

मंच पर विशिष्ट विद्वान् तथा आमंत्रित वक्तागण विराजमान थे। सभी ने अनेक प्रकार से भगवान तथागत की प्रशंसा की। किसी ने कहा, वे अपूर्व त्यागी थे। किसी ने बताया, उन्होंने जीवन एक नयी वस्तु की खोज में बिता दी। भगवान बुद्ध सच्चे अर्थों में महात्मा थे। सरस तथा मनमोहक कवितायें पढ़ी गयीं। बड़े-बड़े विद्वानों के विद्वता-

पूर्ण सारगर्भित भाषण हुए। तथागत को प्रत्येक व्यक्तिने श्रद्धांजलि अर्पित की। श्रोतागण वक्ताओं के विचार पूर्ण विवेचनात्मक भाषण में रुचि ले रहे थे। सामने तथागत की स्वर्ण प्रतिमा के सम्मुख सुगंधित धूप-दीप जल रहे थे। सुगंधित वायुसे वातावरण सुरभित हो रहा था। अभी अनेक वक्ता बोलने वाले थे। दोपहर हो चला था मैंने सोचा, पास ही के जलपान गृह में चलकर जलपान कर लूँ। पुनः आकर भाषण तथा प्रवचनों का श्रवण करूं। पास ही मधुर जलपान गृह था। मैं उधर ही बढ़ा जा रहा था। मेरे साथ कोई भी न था, मैं अकेला था। सोच रहा था कोई साथी मिल जाता तो अच्छा होता। सामने जलपान गृह के दरवाजे पर पहुँचा। देखा कल जिन बौद्ध भिक्षुओं से गाड़ी में मुलाकात हुई थी, वे ही लोग वहाँ से निकल कर चले आ रहे हैं।

नम्रता पूर्वक मैंने उन्हें नमस्कार करते हुए कहा—"कहिए आप लोग समय से तो पहुँच आये न।"

मेरी ओर देख उन दोनों भिक्षुओं के भी हाथ बरबस उठ गए। उनमें से बड़े ने कहा—"जी हम समय से चला आया। आप भी यहाँ आया है।"

मैंने कहा—"जी मैं तो वाराणसी में रहता ही हूँ। इस अवसर पर भला यदि न आता तो कब आता। आप लोगों को किसी बात का कष्ट हो तो कहें।"

"जी, कोई नहीं।"

"क्या आप लोग मेरा निमन्त्रण स्वीकार कर जलपान करने में मेरा साथ दे सकेंगे?" नम्रता से मैंने कहा—उनका उत्तर था, "हम अभी

भीतर जलपान किया है। वहाँ जाकर भाषन सुनना है। यहाँ पर हम किसी से नहीं जानता। आप एक ज्ञान का आदमी हैं। हमको आपसे कुछ पूछना है। आप हमारे धरमसाला में आ जाय तो हम आपका किरपा मानेगा। १४ नम्बर का कमरा में हम हैं" उनमें से छोटे भिक्षु ने नम्रता पूर्वक सारनाथ स्थित बिरला धर्मशाला की ओर उँगली से इंगित किया।

मैंने नम्र शब्दों में उत्तर दिया "सायंकाल ५ बजे आप लोगों के दर्शन में अवश्य करूँगा। कोई सेवा हो तो कहें।"

"साम को हम वहीं बात करेगा" उन्होंने कहा। नमस्ते कर वे पांडाल की ओर चले गये।

जब मैं जलपान कर पांडाल में पहुँचा, तब कार्यवाही समाप्त होने वाली थी। सायंकाल बौद्ध दर्शन सम्मेलन तथा दीपावली का आयोजन था। अन्त में कवि सम्मेलन का भी आयोजन किया गया था। तुरंत कार में बैठ मैं घर वापस आया। मैं आज के सारनाथ के इस ऐतिहासिक महोत्सव का अपने जीवन के सर्वाधिक महत्व पूर्ण दिनों में गणना करूँगा।

सायंकाल मैं पाँच बजे उन्हें मिलने का समय देकर आया था। मुझे अवश्य साढ़े चार तक घर से चल देना चाहिए। ताकि पाँच बजे उनसे मिल सकूँ। भारतीय समय का उपयोग वहाँ न करना चाहिए, नहीं तो वे क्या सोचेंगे।

ठीक चार बजे घर से निकला। गाड़ी में बैठकर सारनाथ की ओर चला। इस समय भी मैं अकेला ही था। कार अपने तीव्र चाल से

चली जा रही थी। १५ मिनट में सारनाथ में पहुँच गया। उनके पास ठीक समय से ही जाना उचित होगा! तब तक घूम लूँ। चलूँ सारनाथ महादेव जी का ही दर्शन कर लूँ। मैं इधर ही बढ़ा चला जा रहा था। आगे महादेवजी का मन्दिर भी अब नए ढंग का बन गया है। पहले तो इस पर एक काई लगे चूने की परत मात्र शेष थी। अब तो पीत रंग में सम्पूर्ण मन्दिर रंग दिया गया है! जिस मिट्टी के टूटे-फूटे ढूहे पर यह मन्दिर पहले विद्यमान था, वह अत्यन्त भोंड़ा और अशोभनीय लगता था। उसके स्थान पर ईंटों की समतल ढालुआ परत बिछा दी गयी है। मन्दिर के पूर्वी तरफ जो कच्चा मटमैले घिनौने पानी वाला पोखरा पहले था, वहाँ अब शीतल, स्वच्छ जल, का एक पक्का तालाब है। मन्दिर के फर्श पर सुख्जाक का रंग करा दिया गया है। अब मंदिर दर्शनीय हो गया। मन भगवान शंकर के दर्शन से पवित्र हो गया।

मन्दिर से दर्शन कर मैं बाहर आया। यह मन्दिर के पूर्वी तरफ, यहाँ साँची का स्तूप कैसे आगया। मैंने कभी यहाँ इसे नहीं देखा। चलूँ इसके पास ही चल कर देखूँ। बड़े आश्चर्य की बात है। मैं आगे बढ़ा। इस नव निर्मित स्तूप के नये निर्मित उच्च द्वार से होकर भीतर गया। "सारनाथ स्टेशन" मोटे अक्षरों में स्तूप के ऊपर अंकित है। तो यही नया रेलवे स्टेशन बना है। अब यह सारनाथ के गौरव के अनुरूप हो गया। बड़ा ही आकर्षक है। दूर से सचमुच साँची के स्तूप के सदृश्य प्रतीत हो रहा है। प्लेट फार्म भी कम मोहक नहीं। दोनों ओर बने ये साँची स्तूप के द्वार वास्तव में सारनाथ की गौरवमय परम्परा में एक और सुनहरी कड़ी हैं। पहले का स्टेशन सामान्य स्टेशनों से भी घिनौना

था। पर यह तो मेरी समझ से अपने ढंग का निराला ही बन गया। गोल लम्बे-लम्बे सीमेन्ट के घेरेदार छल्लों से तीन ओर से घिरा स्टेशन सुन्दर और आकर्षक है।

पांच बज चुका। मैंने उन बौद्ध यात्रियों को ठीक पाँच बजे मिलने का समय दिया है। कहीं देर न हो जाय। जल्दी उनके पास पहुँचना है।

बिरला धर्मशाला का यह चौदह नम्बर का कमरा है। दरवाजा तो खुला है। वे मेरा इन्तजार कर रहे होंगे।

मैं कमरे में बिना किसी हिचकिचाहट के प्रविष्ट हुआ। वे ही दोनों भिक्षु बैठे हैं। उनके निकट ही मेरे परिचित तथा सारनाथ के एक प्रसिद्ध भिक्षु भी बैठे हैं। मैंने उन्हें नमस्ते किया। उन लोगों ने खड़े होकर मेरा स्वागत किया। बातें शुरू करने के लिए मैंने पूछा "मुझे देर तो नहीं हुई।"

"जी नहीं।" उनमें से बड़े उम्र वाले भिक्षु ने नम्रतासे कहा—

"मेरे योग्य जो भी सेवा हो निःसंकोच कहें।"

"आपको कष्ट देगा। हम बर्मा से भारत आया है। भगवान का दर्शन करने के लिए। हम भगवान बुद्ध का पूरा असली जीवन चरित जानना चाहता हैं। क्या आप हमें सब जीवन भगवान का बतला देगा।" छोटे भिक्षु ने मुखपर विनम्रता लाते हुए कहा—"इस भाई ने बताया कि हम भगवान के काम में फँसा है। हमारा एक विद्वान मित्र है। उसका बुद्ध भगवान पर कई किताब हिन्दी में निकल चुका है। वह आपको पूरा बात बतला देगा। आपही इनका मित्र है। अब आप कल से हमारा भी मित्र हो गया है।"

मैं बड़े धर्म संकट में पड़ गया। मेरे भिक्षु मित्र ने जो यहाँ इस समय बैठे हैं। मुझे उनसे बात करते जलपान गृह के निकट देख लिया था। इनसे इन्होंने पूछा होगा कि उनसे आपका कैसे परिचय हो गया। रात की ट्रेन की कहानी इन्हें ज्ञात हो गयी होगी। अपने सिर का कार्य मेरे ऊपर दे रहे हैं। पर मुझे संतोष है। भगवान तथागत का जीवन चरित्र इन्हें बतलाने मे मुझे गौरव का अनुभव होगा। ये ही बातें मैं सोच रहा था तब तक मेरे भिक्षु मित्र ने कहना प्रारम्भ किया। "आप इन्हें प्रबुद्ध सिद्धार्थ की पूरी कहानी बता दें। ये इसी कार्य से भारत आए हैं। आप अपने व्यक्ति हैं। मेरी प्रार्थना स्वीकार करें। आप इनसे शायद परिचित हों। आपका शुभनाम चाई नू शुङ तथा आपका मिंग यू नाई है। आप लोग बरमा के प्रसिद्ध पण्डित और लेखक हैं।" क्रमशः बड़े भिक्षु और छोटे भिक्षु की ओर संकेत करते हुए मेरे मित्र ने कहा।

मैंने प्रसन्न मुद्रा मे कहा "मुझे पूर्ण स्वीकार है। जो कुछ भी मुझे ज्ञात है, वह आप लोगों को अवश्य मैं सुना दूंगा। इससे बढ़कर प्रसन्नता की बात क्या हो सकती है। लगभग चार दिन लगेगें। मैं आप लोगों के लिए कार भेज दिया करूंगाँ।प्रतिदिन आप लोग मेरे घर पर आ जाँय। मैं पूरी कहानी आपको क्रम बद्ध सुना दिया करूँगा। सुबह का ही समय ठीक होगा।"

"हम लोग चला आयगा। कार की कोई जरूरत नहीं।" शिष्टाचार के नाते उन्होंने कहा।

मैने कहा "जब घर की गाड़ी है तो फिर क्यों परेशानी आप लोग

उठायेंगें । केवल तीन ही घंटे समय तो आप लोगों का लगेगा । कलसे क्या आप आ सकेंगें ?"

उन्होंने कहा "हाँ तो कल हम आयगा।" अब धीरे-धीरे समय बीत रहा था । सांयकालीन सूर्य की अन्तिम किरणों की ज्योति भी तिमिर में डूब चली रात का चादर फैलने लगा । हम लोग घूमने के लिए निकले । एका-एक संपूर्ण सारनाथ बल्बों की ज्योति से चमक उठा ! तोरण वंदनवार से सजा सारनाथ काफी दर्शनीय हो गया । चारो ओर बिजलियों की गुंथी हुई माला सारनाथ के आवरण से लिपट उसे स्नेहाभिसिक्ति-नगरी के रूप में प्रतिष्ठित कर रही थी । यह दिवाली उस दिवाली से शायद कम न थी जो राम के आगमन के समय अयोध्या वालों ने मनायी थी। हाँ उन्होंने दीप जलाया था, यहाँ बिजली जलायी गयी थी। दूर से देखने पर ऐसा ज्ञात होता था किसी सीमित स्थान में सूर्य की किरणें एकत्र कर ली गयीं है । अवशेष और खंडहरों से ज्योति फूट रही थी। धर्मेकस्तूप आज अपने बुद्ध के आगमन के शुभअवसर पर दीप जलाये, आरती के लिए खड़ा था ! सारनाथ आज उस चमत्कारी कुण्ड की भांति हो गया था । जहाँ से शीतल तीव्र प्रकाश की किरणें छन-छन कर आती हैं। वे आकाश में बिखर रही थीं । गजब की दीपावली थी।

बौद्ध दर्शन सम्मेलन प्रारम्भ हुआ। मंच पर कल्पना के आकार के अनेक बल्ब लगाये गये थे। वे चतुर्दिक प्रकाश बिखेर रहे थे। पांडाल में तिल रखने की भी जगह न थी। किसी प्रसिद्ध संगीतज्ञ ने "यशो-

धरा पनि आग्रो" के गानों से सम्मेलन का समारम्भ किया। अनेक वक्ताओं के प्रवचन हुए। विख्यात विद्वानों ने बौद्ध दर्शन का विवेचन किया! संगीतज्ञों ने मधुर स्वर में संगीत का रसपान भजन गाकर कराया। अन्त में अध्यक्षीय भाषण के बाद सात बजे बौद्ध दर्शन सम्मेलन समाप्त हुआ। पुनः लोकगीत के अनेक गायकों ने भगवान बुद्ध को श्रद्धांजलि अपने मधुर लोकगीतों द्वारा अर्पित की। अनेक गायकों ने लोकगीत सुनाए। अन्त में कवि सम्मेलन का आयोजन किया गया था। इसमें अनेक प्रख्यात कवियों और गीतकारों ने भाग लिया। रात ११ बज रहे थे। मुझे नींद आ रही थी। परसों का थका था। संपूर्ण रात्रि ट्रेन में बीती थी। मैं आकर गाड़ी में बैठ गया। शीतल वायु के मध्य तीव्र गति से गाड़ी भागती जा रही थी। मेरे ओंठ—किसी सफल लोकगीत गायक की प्रथम पंक्ति गुनगुना रहे थे। "आज त बुद्ध बाबा भइलें हो तपसिया"!

घर पर आया। नींद से पलकें बोझिल होती जा रही थीं। तथागत को प्रणाम कर निद्रादेवी की गोद में मैं सो गया।

धरा पति आओ" के गनों से सम्मेलन का समारम्भ किया। अनेक वक्ताओं के प्रवचन हुए। विख्यात विद्वानों ने बौद्ध दर्शन का विवेचन किया! संगीतज्ञों ने मधुर स्वर से संगीत का रसपान भजन गाकर कराया। अन्त में अध्यक्षीय भाषण के बाद मान वजे बौद्ध दर्शन सम्मेलन समाप्त हुआ। पुनः लोकगीत के अनेक गायकों ने भगवान बुद्ध को श्रद्धांजलि अपने मधुर लोकगीतों द्वारा अर्पित की। अनेक गायकों ने लोकगीत सुनाए। अन्त में कवि सम्मेलन का आयोजन किया गया था। इसमें अनेक प्रख्यात कवियों और गीतकारों ने भाग लिया। रात ११ बज रहे थे। मुझे नींद आ रही थी। परसों का थका था। संपूर्ण रात्रि ट्रेन में बीती थी। मैं आकर गाड़ी में बैठ गया। शीतल वायु के मध्य तीव्र गति से गाड़ी भागती जा रही थी। मेरे ओंठ—किसी सफल लोकगीत गायक की प्रथम पंक्ति गुनगुना रहे थे। "आज त बुद्ध बाबा भइलें हो तपस्यिा"!

घर पर आया। नींद से पलकें बोझिल होती जा रही थीं। तथा-गत को प्रणाम कर निद्रादेवी की गोद में मैं सो गया।

यदा यदाहि धर्मस्य

दूसरे दिन प्रातःकाल उठा। ड्राइवर उन लोगोंको लेने चला गया था। मैं भी नित्य क्रिया से निवृत हो, बैठक में आ उन लोगों के शुभआगमन की प्रतिक्षा करने लगा। सात बजे के लगभग वे पधारे। मैंने प्रफुल्लित हृदय से उनका स्वागत किया। चाय मंगाया। सभी लोगों ने चाय पी। मैंने बातों को प्रारंभ करने के ध्येय से कहा 'तो फिर आज से भगवान बुद्ध की कहानी प्रारम्भ होनी चाहिए। कहां से कही जाय।'

चाई न शू ंग, बड़े बौद्ध भिक्षु ने नम्रता पूर्वक कहा 'आप जहाँ से चाहें कहें। हम तो सुनना चाहता हैं। आपको जो अच्छा लगे कहें। शुरू से कहें तो अच्छा होता।'

'तो फिर सुनें। मैं आपको भगवान बुद्ध की कहानी उनके जन्म से प्रारंभ करूंगा। लेकिन पहले उनके समाज के ढांचे की एक रूप-रेखा आपके सम्मुख रख दूँ।

'भारत अनन्त काल से संपूर्ण संसार को मार्ग दर्शन कराता चला आ रहा है। जिस युग में विश्व के अन्य देशों में लोग सभ्यता और संस्कृति के नाम से भी परिचित न थे उस समय हमारा राष्ट्र ज्ञान के

उद्यान में विचरण करता हुआ अपने लक्ष्य के सर्वोच्च शिखर पर पहुँच चुका था। वह अन्य देशों का ज्ञानी गुरू माना जाता था। वह जगत को ज्योति दान दे रहा था। इसी देश के एक अंचल में भगवान बुद्ध अव-तरित हुए थे। भगवान बुद्ध के अवतरण के पहले हमारे इस भारतीय समाज की गौरवमय परम्परा का ह्रास हो गया था। वैदिक मन्त्रों के पवित्र कर्म का कार्य कर्मकान्ड ने ले रखा था। लोलुप लालची कर्मकांडी बड़े से बड़ा विनाश अपने जेब भरने के लिए कराने को तैयार थे। नित्य होम-यज्ञ हुआ करते थे। वाराणसी, अयोध्या आदि नगरों में पशुओं की बलि यज्ञ के अवसर पर दी जाती। बड़े-बड़े यजमान सोचते यह स्वर्ग जाने का आयोजन हो रहा है। इन्हें ज्ञात न था कि किसी भी जीव का रक्त-पात उसके लिए कितना कष्ट दायक होता है। जीव जीव ही है। यज्ञ के नाम पर ठगी का तथा हिंसा का व्यापार चलता था। लोग मांस भक्षी हो गये थे। विरागी गण अपने शरीर को अनेक भयंकर कष्ट देकर जंगलों में तप करना वैराग्य का सबसे बड़ा धर्म समझते थे। संसार के मोह से परित्यक्त होना ही सच्चा विराग है। पर उनकी दृष्टि इस तरह इन दिखा-वटी और कष्टदायी समस्याओं में उलझ गयी थी कि उससे बाहर जा ही नहीं सकती थी। क्षत्री गण जिनका प्रमुख कार्य रक्षण था वे केवल सुरा और सुन्दरी में लीन रहा करते थे। राजधर्म का उतना सम्मान न था जितना चाटुकारिता का। योगी, शासक और अन्य श्रेणीगण इस प्रकार के क्षुद्र प्रवृत्तियों के द्वारा अपना व्यक्तित्व खो बैठे थे। ऐसी परिस्थिति में प्रजा भी उनका अनुकरण करती। इसी प्रकार के अन्य कार्यों के करने में वह गौरव का अनुभव करती थी। यह तो थी सामाजिक परिस्थिति उस

लिए अपने सत्य पथ से विचलित होते हुए अर्जुन को भगवान कृष्ण ने रण क्षेत्र में जो उपदेश दिया था, वही गीता में संग्रहीत किया गया है। यह गीता का एक श्लोक है। जो इस प्रकार है—

यदा यदाहि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत,

अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्।

परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्,

धर्म संस्थापनार्थाय संभवामि युगे युगे॥

इसका हिन्दी अनुवाद है कि हे अर्जुन जब-जब धर्म का ह्रास होता है, तब-तब धर्म के उन्नयन के लिए मेरी सृष्टि होगी। साधु जन के रक्षण के लिए, दुष्टकार्यों के विनाश के लिए तथा धर्म की संस्थापना के लिए मैं युग-युग में शरीर धारण करूंगा।" इसी के अनुरूप इस युग की परिस्थिति को देख कर भगवान बुद्ध ने पृथ्वी के भार को हल्का करने, तथा लोगों के मन की अशांति को दूर करने के लिए जन्म ग्रहण किया।"

और किसी बात में कोई शंका हो तो पूछें।" मैंने कहा—

उस समय के समाज के बारे में हम पूरा-पूरा समझ गया।"

नाई चू शुंग बोला।

युग की। आप लोग मेरी बात पूरी समझ पा रहे हैं या नहीं। जहां कठिनाई हो कहेंगे।' मैंने भिक्षुओं की ओर संकेत करते हुए कहा।

वे लोग ध्यानमग्न हो मेरी बातें सुन रहे थे। शिग यूनाई ने कहा 'हम सब समझ रहा हैं, बड़ा अच्छा उस सबके बारे में आप जानता हैं।''

मैंने आगे कहना प्रारम्भ किया 'लेकिन उस युग में विद्वान लोग अच्छे-अच्छे ग्रन्थों का निर्माण भी कर रहे थे। आध्यात्मिक उन्नति भी हो रही थी। जैमिनी ने मीमांसा शास्त्र पर ग्रन्थ लिखा, व्याकरण शास्त्र पर रचना की जा रही थी। इसी प्रकार साहित्य और संस्कृति का पूर्ण विकास हो रहा था। पर उनका केवल नाम मात्र को महत्व था। कर्मकांडी लोग अपने आगे किसी को चलने ही नहीं देते थे। उनका एक मात्र मन्त्र अनर्गल प्रचार करना था। इस प्रकार साहित्यिक और आध्यात्मिक उन्नति होते हुए भी उसका कोई महत्व जन-जीवन में न था। वे तो दिखावे के पीछे दब गये थे। जब समाज का ह्रास होता है, जनता का मानसिक स्तर गिरने लगता है, वह बरबादी के पथ पर अग्रसर होती है, तब ''यदा यदा ही धर्मस्य के अनुसार'' समय-समय पर युग की आकांक्षा पर भगवान जन्म धारण करते हैं। वे मानव विपत्तियों का हरण करते हैं। इसी प्रकार के समाज में भगवान बुद्ध अवतरित हुए।

शिग यूनाई ने जिज्ञासा का भाव अपने मुख पर व्यक्त करते हुए कहा ''यदा-यदा हि धर्मस्य'' का पूरा अर्थ हमें समझा दें।

मैंने कहा 'ठीक है। भगवान कृष्ण भारत के एक अवतारी पुरुष हो गये हैं। महाभारत युद्ध का नाम आपने सुना होगा। धर्म और सत्य के

लिए अपने सत्य पथ से विचलित होते हुए अर्जुन को भगवान कृष्ण ने रण क्षेत्र में जो उपदेश दिया था, वही गीता में संग्रहीत किया गया है। यह गीता का एक श्लोक है। जो इस प्रकार है—

यदा यदाहि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत,

अभ्युथानामधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्।

परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्,

धर्म संस्थापनर्थाय संभवामि युगे युगे॥

इसका हिन्दी अनुवाद है कि हे अर्जुन जब-जब धर्म का ह्रास होता है, तब-तब धर्म के उन्नयन के लिए मेरी सृष्टि होगी। साधु जन के रक्षा के लिए, दुष्टकार्यों के विनाश के लिए तथा धर्म की संस्थापना के लिए मैं युग-युग में शरीर धारण करूंगा।" उसी के अनुरूप इस युग की परिस्थिति को देख कर भगवान बुद्ध ने पृथ्वी के भार को हल्का करने, तथा लोगों के मन की अशांति को दूर करने के लिए जन्म ग्रहण किया।" और किसी बात में कोई शंका हो तो पूछें।" मैंने कहा—

उस समय के समाज के बारे में हम पूरा-पूरा समझ गया।" ताई चू शुंग बोला।

त्वमादिदेवः पुरुषः पुराणं

मैंने आगे कहना प्रारम्भ किया, "महाराज शुद्धोधन यज्ञादि में लीन होकर सविधि पूजन, यजन करते रहे। उनके वंश का दीपक बुझ रहा था। स्नेह से उसे वे पुनः प्रज्वलित करना चाहते थे। वे सोचते मेरे वंशके दीप की ज्योति किसी प्रकार प्रज्वलित हो जाती। उसके प्रकाश से मेरी प्रजा सुखी होती। बुद्ध ने अनेक बार पृथ्वी पर मानव जन्म लिया है। वे ब्राह्मण अथवा क्षत्रिय परिवार में ही उत्पन्न होते हैं क्योंकि। श्रेष्ठ परिवार ये ही हैं। शीलवान, गुणी, तथा सर्व श्रेष्ठ साधक महाराज शुद्धोधन इस समय प्रतापी राजा हैं। उनके वंश में ही बुद्ध को जन्म लेना उचित है।

सिद्धार्थ के वे ही पिता होंगे। माता होने योग्य महारानी मायादेवी हैं। वे जन्मजात सदाचारिणी हैं। मदिरा का उन्होंने कभी सेवन तक नहीं किया है। वे राज-माता हैं।

कपिलवस्तु में आज आषाढ़ मास का पवित्र उत्सव आयोजित था। महाराज तथा महारानी सभी ने इस उत्सव में भाग लिया। आकर्षक पवित्र वस्त्रों को धारण कर महाराजा और महारानी ने इस पावन-

पर्व को सविधि मनाया। दिन बीता। रात आयी। महामाया देवी अपने शयनकक्ष में जाकर शीघ्र शयन करने के निमित्त आसन पर लेट गयीं। दिन के परिश्रम से वे थक गयीं थीं। शीघ्र वे निद्रादेवी की गोद में सो गयीं। निद्रित अवस्था में देखा, "नवनीत के सदृश श्वेत-हाथी का रूप धारणकर, बोधिसत्व अपनी लम्बी सूँड़ में जो श्वेत सुगन्धित गजरे के समान दिखाई पड़ रही थी, कीर्ति सा धवल पंकजमाल लिये, शय्या की तीन बार प्रदक्षिणा कर रहे हैं। सुमधुर नाद हो रहा था। वे दाहिनी कुक्षि को चीरकर उसमें प्रविष्ट हो गये।" प्रभात-वेला में महारानी निद्रावस्था से जगीं। स्वप्न साकार होता प्रतीत हुआ। उन्हें अपने भीतर एक भारी पनका अनुभव हुआ। उन्होंने गर्भ धारण किया था।

रात की बात, सहमते-सकुचाते उन्होंने महाराज को सुनायी। महाराज ने चौंसठ विद्वान ब्राह्मणों की गोष्ठी बुलायी। सहर्ष उनका स्वागत किया। विधिवत भोज देने के उपरान्त महाराज ने रानी के स्वप्न को जो रात्रि में उन्होंने देखा था, उन विद्वानों से कह सुनाया। गहन विचार-विमर्श के बाद विद्वान् लोग इस निष्कर्ष पर पहुँचे, महारानी ने गर्भ धारण किया है। उनके गर्भ से आपको पुत्र रत्न की प्राप्ति होगी। वह पुत्र या तो महाचक्रवर्ती सम्राट होगा अथवा यदि वह विराग लेकर परिव्राजक बना तो प्रबुद्ध बुद्ध होगा। उसका साम्राज्य विस्तृत होगा। सम्पूर्ण संसार परिव्राजक की प्रजा होगी।"

यह सुसमाचार सभी लोगों को ज्ञात हुआ। हर्ष का वातावरण चारो ओर छा गया। सभी लोग फूले न समाये। महारानी के जीवन में

परिवर्तन आया। वे प्रफुल्ल हो गयीं। महाराज के मन में भाव उठता ? अब जीवन सफल होगा। मेरे वंशका दीपक प्रज्वलित होगा। मैं धन्य हूँ। प्रजा सोचती हमारे राज-कुमार अवतरित होगें। आनन्द मनाया जायगा। चारों ओर प्रसन्नता ही प्रसन्नता थी। सूखती हुई फसल पर वृष्टि हुई। सबके मन की कोमलता मुरझा चुकी थी। पर अब वह एक नये अंकुर के आगमन की प्रतीक्षा में हरित हो रही थी। कविके मानस-की कली खिलेगी। नया वृन्त, फूटेगा! चारों ओर आनन्द होगा, सभी यही सोचते।

धीरे-धीरे प्रसन्नता का यह मंगल दिवस निकट आने लगा। प्रायः भारतीय समाज की यह परम्परा रही है कि प्रथम पुत्र का जन्म पीहर (पिता के घर) में ही होना चाहिए। इसी विचार से महामाया देवी ने अपने पिता के घर (कोलि-राज्य) में जाने की इच्छा महाराज के सन्मुख व्यक्त की। क्योंकि प्रसवकाल अब निकट आ गया था। महाराज ने रानी की इच्छा के अनुरूप जाने की आज्ञा दी। उनके साथ महाराज स्वयं तथा प्रजावती भी चलीं। नौकर-चाकर तथा अन्य व्यक्ति भी चले।

कपिल वस्तु और देव दह के मध्य महाराज ने एक अत्यन्त सुन्दर बाग बनवाया था। इसे लुम्बिनी कानन कहते थे। महामाया के पिता की राजधानी देवदह और कपिलवस्तु के मध्य स्थित होने के कारण दोनों राज्यों के प्रमुख व्यक्तियों के आमोद प्रमोद का यह साधन स्थल था, इस उद्यान के मध्य एक सुन्दर प्रासाद निर्मित था। स्वयं महाराज शुद्धोधन कभी-कभी यहाँ पधारते थे। अपने पिता के घर जाते समय

महामाया ने महाराज से लुम्बिनी कानन देखने की इच्छा व्यक्त की। महाराज महामाया की बात मानकर कानन में रुके। वहां का आकर्षक प्राकृतिक दृश्य महामाया के मनको मोहित करने में सफल रहा। इसीलिए तो वे यहां रुकी थीं। कुछ देर विश्राम करने के उपरांत ही अपने पिता के घर जाना चाहती थीं। उद्यान में प्रकृति नीरीक्षण वे महाराज के साथ-साथ कर रही थीं। बीच-बीच में बातें भी करती जा रहीं थीं। एक आकर्षक शाल-वृक्ष के नीचे वे पहुँचीं। यह शाल-वृक्ष अन्य वृक्षों की भांति पूर्ण रूप से विकसित था। अनेक डालियां पुष्पित हो नीचे की ओर लटक रहीं थीं। शालकी शाखा महादेवी के हाथों में आ गयी। वे इसे पकड़ ही पायी थीं कि तीव्र-प्रसव-वेदना से वे आक्रान्त हो गयीं। वहां से महाराज तथा अन्य कर्मचारी हट गये! कनात लगा दिया गया। धाइयाँ और उनकी सहयोगिनी प्रजावती साथ थीं। शाखा - पकड़े ही पकड़े उनके गर्भ से शिशु का जन्म हुआ। यही आगे चलकर भगवान बुद्ध हुए। वे जन्म के समय अन्य बालकों की भांति मल इत्यादि में लिप्त पैदा नहीं हुए, बल्कि धवल स्वच्छ पद्मासन लगाये हुए अवतरित हुए।"

उनके उत्पन्न होने का समाचार सुन सभी लोग प्रसन्न हो गये। महाराज शुद्धोधन ने अपूर्व उत्सव मनाया। आज जैसा उत्सव राज-नगरी में पहले कभी नहीं देखा गया था। सभी प्रसन्न थे। महाराज के जीवन की आज सबसे बड़ी आशापूर्ण हुई थी। जिसके लिए वर्षों साधना की, वह आज सफल हुआ। उनको आज सिद्धि प्राप्त हुई थी। उन्होंने स्वयं नवजात दिव्य शिशु का नाम सिद्धार्थ रखा। इसी समय अन्य राज्यों में प्रसेनादित्य,

बिम्बसार, उदयन आदि भी उत्पन्न हुए। अतः चारों ओर सम्पूर्ण देश में प्रसन्नता का वातावरण व्याप्त था। देश भर में आनन्द मनाया जा रहा था। जय-जयकार के उच्चघोष से सारा भारत गुंजरित हो रहा था। प्रसिद्ध कुल पुरोहित विश्वामित्र ने गौतम नाम रखा। सातवें दिन महारानी माया देवी स्वर्ग सिधार गयीं। उन्होंने अपने शिशु को अपनी भगनी को सौंपा। वे थोड़े दिन भी माता का सुख न भोग सके। महाराज दुखी थे। पर उन्हें पुत्र प्राप्ति की प्रसन्नता के कारण इस दुःख का उन्हें ध्यान न था।

महाराज ने अनेक धात्रियां अपने प्रिय पुत्र के लिए रखी। महा प्रजावती अपने प्राणों से बढ़ कर गौतम को मानती। यह कोई नहीं कह सकता था कि यह उनका पुत्र नहीं है। धात्रियों की सहायता से वे सब प्रकार गौतम के लालन-पालन में लीन रहतीं।

लुम्बिनी वन से महामाया की मृत्यु के बाद महाराज गौतम को महा प्रजावती के सहित कपिल वस्तु अत्यन्त प्रसन्नता के साथ लेकर आये। पुनः उत्सव का आयोजन किया गया। नर्तकियों, गायकों, कलाविदों ने अच्छा पारितोषिक पाया। सभी ने अपने-अपने कौशल व्यक्त किए। महाराज तथा प्रजागण हर्षातिरेक से फूले न समाते थे।

शुद्धोधन महाराज के कुल के सर्व मान्य ऋषि काल-देवल जिन्होंने जीवन भर समीक्षा धारण कर अपने को पवित्र किया था, उस युग में मान्य मुनि माने जाते थे। जब उन्हें ज्ञात हुआ कि महाराज शुद्धोधन को पुत्र रत्न की प्राप्ति हुई है तो वे आशिर्वाद देने कपिल वस्तु पधारे। महाराज शुद्धोधन ने जब सुना कि महात्मा जी पधारे हैं तो हर्षातिरेक में

गौतम को अलंकृत रत्न आभूषणों से सुशोभित कर महात्मन के दर्शन के निमित्त उनके पास श्रद्धानत हो गये। महाराज ने उनके चरणों पर शिशु गौतम को रखना चाहा। पर गौतम के चरण स्वयं उठकर तापस के जटा से लगे। तापस इस कृत्य को देख विह्वल हो गये। भावातिरेक में इनके नेत्रों से प्रेम-नीर बहने लगा। वे तुरत अपने पूर्वासन से उठे और अपने मस्तक को शिशु के चरणों पर रख दिया। सभी लोग एक टक इस कृत्य को देख रहे थे। महाराज के आश्चर्य की सीमा न रही।

महाराज ने साहस कर पूछा "महाप्रभु! आप के नेत्रों में नीर आने क्या कारण है। आप तो विरागी हैं।"

तापस ने विलखते हुए कहा "यह बुद्ध हैं। समय-समय पर इनका अवतरण इस संसार में होता है। मुझे हार्दिक क्लेश है कि मैं इनके दर्शन न पा सकूंगा और इनके उन उपदेशों का श्रवण न कर सकूंगा जो ज्ञान प्राप्ति के बाद ये जगत को सुनायेंगे।" महामुनि के मस्तक पर उद्विग्नता के भाव स्पष्ट परिलक्षित हो रहे थे।

इस बात को सुन महाराज के आश्चर्य की सीमा न रही। सभी उपस्थित व्यक्तियों ने श्रद्धानत हो गौतम के पावन चरणों का स्पर्श किया। महाराज ने भी अपने शिशु के चरणों दंडवत किया। बुद्ध उस समय पूजित हो रहे थे किसी ने ठीक कहा है।

त्वमादिदेवः पुरुषः पुराणः
त्वमस्य विश्वस्य परं निधानम।

वेत्तासि वेद्यं च परं, च धाम,
त्वयाततं विश्वमनन्त रूपम् ॥

तपस्व ने अपने भागिनेय और शिष्य नाड़क को आदेश दिया "तुम आज ही परिव्राजक हो जाओ। पैंतीस वर्ष बाद यह बालक प्रबुद्ध बुद्ध होगा। मोक्ष का मार्ग बतलायेगा।

नाड़क मामा की बातों पर विचार कर तुरत परिव्राजक हो गया। उसने बाल घुटवाये। काषाय वस्त्र धारण किया। तुरत ही परिव्राजक बन उस अपूर्व ज्ञान को प्राप्त करने के लोभ से पहले ही हिमालय की कंदरा में प्रविष्ट हो गया। तापस अपनी दृष्टि से बुद्ध का दर्शन कर तन-मन को शीतल कर अपने आवास पर चले गये।

महाराज को चिन्ता हुई। वे सोचते इतनी साधना के बाद लगाया क्या यह पौधा कभी हरित वृक्ष का रूप धारण करेगा। जिससे मुझे मिष्ट फल की आकांक्षा है, क्या जहरीले अनारस के फल देगा। क्या इसी लिए पुत्र उत्पन्न हुआ है कि आगे चलकर यह तपस्वी हो जाय। मेरी आशाओं पर पानी फेर दे। इसी प्रकार कल्प-विकल्प में वे दिन-रात डूबे रहते।

उन्होंने पुनः एक सौ आठ विद्वान ब्राह्मणों की विशाल गोष्ठी का आयोजन किया। उनका सादर सत्कार कर महाराज ने बालक के भविष्य का लक्षण पूछा। इनमें आठ व्यक्ति भविष्य ज्ञाता थे। वे जो कुछ कहते सर्वदा उचित और ठीक होता।

सात महाज्ञानी पंडितों ने एक स्वर से कहा—"यदि यह बालक घर पर रहेगा तो चक्रवर्ती सम्राट् होगा। इसकी यश पताका देश-देशान्तर में

फैलेगी। यदि परिव्राजक बनकर बाहर निकल गया, तो यह संसार का जगमगाता ज्योति स्तम्भ होगा। इसके ज्ञान द्वारा युग-युग तक लोक अलोक प्राप्त करते रहेंगे।

आठवां ब्राह्मण कुमार जो अभी अल्प अवस्था का था, निर्भीक भाव से बोला—"इस बालक के घर में रुकने की मुझे संभावना प्रतीत नहीं होती। यह अवश्य अपूर्व ज्ञानी तथा संसार का पथप्रदर्शक होगा।" यह भविष्य वक्ता कौण्डिन्य महाराज को कष्ट देने का कारण हो गया। उन्होंने सोचा जैसे भी होगा, मैं अपने पुत्र को विरागी नहीं होने दूंगा। यह अवश्य चक्रवर्ती सम्राट् होगा।" मैंने प्रबुद्ध के जीवन का एक पूरा अंश उन बौद्ध भिक्षुओं को सुनाया। वे मेरी ओर इस तरह देख रहे थे, मानों मैं कहानी नहीं, बल्कि पूरी सच्ची घटना का वर्णन कर रहा हूं। जहां तक मैंने अध्ययन किया था और जो कुछ मुझे ज्ञान हो सका था, उसपर चिंतन कर मैंने उन्हें यह बातें बतलायीं।

चाई त्शुंग ने मेरी ओर जिज्ञासा भरी दृष्टि से देखते हुए कहा—"आप बुद्ध के जनम की बात बतलाया। उनका आगे कैसे जीवन बीता यह भी धीरे-धीरे बतावें।"

मैंने कहा—"एक दिन में सारी कहानी नहीं समाप्त हो सकती। उसके लिए समय चाहिए। ३-४ दिन का समय मैं आप लोगों का नष्ट करूंगा हां! एक बात बताना मैं भूल ही गया था। जिस समय गौतम गर्भ से उत्पन्न हुए उसी समय अनेक अन्य सहयोगी जिनसे जीवन में अत्यधिक सहायता मिली, अवतरित हुए थे।। यथा स्थान मैं उनका वर्णन करूंगा। पर इस समय उनका नाम बतादूं। उनमें छन्दक (छन्न), अमात्य

(प्रबन्धक) अश्वराज (कन्थक) गजराज (आजनीय) बोधि-वृक्ष(वट-वृक्ष) चार-रत्न पूर्ण घड़े प्रमुख थे। ये राज्य के आसपास भारत के विभिन्न अंचलों में भगवान के साथ ही अवतरित हुए थे।

आप लोग कुछ थके से मालूम हो रहे हैं। कुछ जलपान आदि मंगाऊं। "जी नहीं। अभी हम कुछ नहीं चाहता, केवल कहानी आप सुनायें।" साथ ही वे बोल उठे "आपका अच्छा ज्ञान है।"

ठीक है। आगे अभी सुना रहा हूँ।

— —

ॐ तत्सवितुर्वरेण्यम्....

आगे की कहानी मैंने प्रारम्भ की। वे दत्तचित्त ध्याननिमग्न हो सुन रहे थे। मैं उन्हें समझाते हुए बोलता चला जा रहा था, गौतम बुद्ध का बचपन अत्यन्त सुखपूर्वक बीता। वे प्रतिदिन बढ़ते जा रहे थे। पिता का स्नेह, माँ महाप्रजावती का वात्सल्य, प्रजा का अनुराग तथा विशिष्ट चतुर धाइयों द्वारा सेवा-शुश्रूषा के कारण वे बढ़ते हुए चन्द्रमा की ज्योति बिखेर रहे थे। उनका बचपन का संस्कार अत्यन्त सुदृढ़ भित्तियों पर आधारित था। गौतम का नामकरण, निष्क्रमण आदि संस्कार सविधि महाराज ने उदयिनि नामक कुल पुरोहित से कराया। बचपन से ही कुमार शांति-प्रिय थे। उनमें दयालुता का अंकुर बालपन से ही विद्यमान था। वे शीलवान थे।

बचपन के दिन बीत चले। अब कुमार धीरे-धीरे ८ वर्ष के हुए। महर्षि कौशिक ने व्रत-बंध संस्कार कराया। वे ब्रह्मचारी बनाये गये। मृग चर्म, मेखला, दंड आदि धारण करना उनके लिए अनिवार्य हो गया। अपने सुपुत्र को अनेक सदुपदेश दे महाराज ने आचार्य विश्वामित्र के आश्रम में प्रविष्ट कराया। जब महर्षि विश्वामित्र महाराज के राज्य में

गौतम को लेने के लिए आए, उस समय वे सोच रहे थे कि आज उन्हें एक सुयोग्य शिष्य को शिक्षित करना है। उसे ज्ञान-विज्ञान से परिचित कराना है। उसके भावी जीवन को मंगलमय बनाना है। उन्होंने कुमार सिद्धार्थ को उपदेश देते हुए बतलाया "सत्यंवद, धर्मं चर स्वाध्यान्मा प्रमदः" आचार्याय प्रियं धनमाहृत्य प्रजातन्तुं माव्य वच्छेत्सीः। सत्यान्न प्रमदितव्यं। स्वाध्याय प्रवचनाभ्यां न प्रमदितव्यं। देवपितृ कार्याभ्याम् न प्रमादितव्यं। का सदुपदेश दिया। आज अपने पितृ गृह को त्याग कुमार सिद्धार्थ अध्ययन के लिए महर्षि विश्वामित्र के आश्रम को जा रहे थे। महाराज शुद्धोदन के हृदय की लालसा सफल हुई। जनता-जनार्दन चाहती थी कि अभी महाराज कुमार को भेजने स्थाने देते। पुनः अध्ययनार्थ उन्हें महर्षि आश्रम में भेजते। पर राज नियम तोड़ा नहीं जा सकता था। वह तो सबके लिए मान्य था। श्रेष्ठी गणों ने महाराज की राय से अपने इस कुमार को योग्य-शासक के रूप में देखने के लिए ही तो राजकुमार को महर्षि आश्रम में प्रेषित करने का निश्चय किया था।

राजकुमार सिद्धार्थ अपने गुरु विश्वामित्र के साथ उनके पावन आश्रम में पधारे। यह आश्रम अत्यन्त सुन्दर ढंग से निर्मित था। जंगल के मध्यस्थित इस आश्रम की प्राकृतिक छवि दर्शनीय थी। बड़े-बड़े विशाल वृक्ष की शीतल छाया से आश्रम घिरा हुआ था। जब मंद वायु प्रवाहित होती, पत्ते खड़खड़ा उठते, शीतल सुरभित वायु दिशाओं को पवित्र सुगन्धि से परिपूर्ण कर देती। अनेक कुंज स्वयं निर्मित हो गये थे। वे ऊपर लता-विटपों के भार से झुके हुए प्रतीत हो रहे थे। जब कुमार सिद्धार्थ इस आनन में आये, तब आश्रम के निकट के अन्य छात्र ब्रह्म-

चारीगण सिद्धार्थ का स्वागत करने के निमित्त आये। कुमार सिद्धार्थ सादर आश्रम में ले जाये गये।

पवित्र तिथि को कुमार की दीक्षा प्रारम्भ की गयी। महर्षि के सम्मुख सिद्धार्थ लाल चन्दन की सुरभित पट्टिका लिए बैठे थे। इसकी मूठ चमकते हुए बहुमूल्य हीरे की थी। इस पट्टिका की चिकनाहट स्नेह से भी अधिक तरल चूर्ण घर्षण द्वारा की गयी थी। सर्वप्रथम ऋषि ने गायत्री मन्त्र का स्वयं उच्चारण किया। पुनः कुमार को उच्चारित करने के लिए कहा।

कुमार ने नम्रता पूर्वक महर्षि द्वारा कहे गये गायत्री मन्त्र का उच्चारण किया —

"ॐ, तत्सवितुर्वरेण्यम् भर्गो देवस्य—
धीमही धियो योनः प्रचोदयात्।"

इसके शब्दार्थ से उन्हें अवगत कराया गया।

कुमार सिद्धार्थ ने अपनी मेधावी प्रतिभा के कारण सबको आश्चर्य में डाल दिया। ऐसे ब्रह्मचारी इस विद्यापीठ में कम आये थे, जिनकी स्मरण शक्ति इतनी तीव्र रही हो।

पुनः सिद्धार्थ ने इस मन्त्र को अपनी पट्टिका पर लिखा। वे आश्रम में आने के पहले ही उस युग की प्रचलित सभी लिपियों से परिचित हो चुके थे। पट्टिका पर इस मन्त्र को अनेक लिपियों में शीघ्र लिखने में वे सफल रहे। पट्टिका पर धूल फैला कर अपनी उंगली से नागरी, दक्षिणी, वी, मंगल, परुष, यावा, तिर्यी, उक, दाद, सिक्यानी, अन,

सभ्याचार, चित्रलिपि तथा आदिम वासियों की अनेक जंगली भाषा में उल्टी-सल्टी मन्त्र लिखा और उच्चारण कर महर्षि को सुनाते गये। इससे महर्षि की प्रसन्नता की सीमा न रही।

पुनः महर्षि ने उन्हें गणित सिखाया। वे गणना करते जाते, साथ-साथ ब्रह्मचारी गौतम भी। धीरे-धीरे उस अंश तक गौतम ने अपने आप गणना की, जिससे छोटे-छोटे कण भी गिने जा सकते थे।

वैज्ञानिक शिक्षा के आधार पर सिद्धार्थ ने शीघ्र जान लिया कि कैसे सघन-घन से बरसाने वाले जल-कणों, समुद्र की बूंदों की गणना की जा सकती है। वे रेखागणित में भी पारंगत थे। इसकी शिक्षा देने की आवश्यकता महर्षि को न पड़ी। महर्षि कुछ कहें इसके पहले ही सिद्धार्थ अपनी अलौकिक प्रतिभा से तुरत उत्तर देते चले जाते। अब सिद्धार्थ ने वेदों का अध्ययन प्रारम्भ किया। अल्पकाल में चारों वेदों को समाप्त कर वे दर्शन शास्त्र की ओर अग्रसर हुए। न्याय, सांख्य, वेदांत मीमांसा आदि की विस्तृत व्याख्या महर्षि उन्हें सुनाते, वे उसे ग्रहण करते जाते। पुनः इतिहास पुराण, आगम-निगम आदि की शिक्षा समाप्त कर वे अपने युग की सभी प्रकार की शिक्षा ग्रहण कर चुके। उनका प्रतिदिन का नियम था कि गुरु की आज्ञानुसार वे अध्ययन करते। वे एकांत चिन्तक थे। साधना साकार हुई। अनेक उपाध्यायों (अध्यापकों) से अधिक वे जानते। पर उसे व्यक्त न करते। उन्हें इस बात का कदापि भी दर्प न था कि मैं ज्ञानी हूँ। स्वयं महात्मा विश्वामित्र उनके ज्ञान के आगे अपने ज्ञान को अल्प समझते। सांख्य के उपदेश उनके अन्तः करण में

स्थान बना चुके थे। वे सोचते, मैं बड़ा होऊंगा, अवश्य ही कोई मार्ग निकालूंगा जिससे संसार इस भव सागर से पार हो सके।

सिद्धार्थ ने इस प्रकार अपना ब्रह्मचर्य जीवन गहन अध्ययन करते हुए आश्रम में बिताया। गुरु ने सब विधि योग्य समझ उन्हें आश्रम से विदा किया। वे पूर्ण विद्वान होकर विद्यापीठ से निकले। विद्यापीठ से उनके जैसे सयत्नशील विद्वान छात्र के चले जाने से आचार्य को कष्ट हुआ, पर वे सिद्धार्थ को प्रगति के पथ पर अग्रसर देखना चाहते थे। कुमार पुनः अपनी राजधानी लौट आये।" मैंने भगवान बुद्ध के शिक्षा-दीक्षा तथा ब्रह्मचर्य जीवन की पूरी कहानी बुद्ध भिक्षुओं को सुना दी। वे ध्यानावस्थित हो मेरी बातें सुन रहे थे।

मैंने पूछा "मेरी बातें समझने में आप लोगों को कठिनाई का अनुभव करना पड़ता होगा। मैं हिन्दी बोल रहा हूं। शायद आप लोग मेरी बात पूरी-पूरी न समझ रहे हों।"

ताई चू शुंग ने कहा—"हम संस्कृत तथा पालि का अच्छा जानकार है। उसका खूब अध्ययन किया है। भारत की देशी भाषा हिन्दी भी वर्षों से हम लोग सीख रहा है। यहां का अच्छा-अच्छा ग्रन्थों का अपने देश में अनुवाद करना चाहते हैं। आपके भाषा में बहुत अच्छा गुण वाला बातें पड़ा हुआ है। हिन्दी सीख कर अपने देश में उनको हम फैलायेगा। आप जो बोल रहा है, पूरा-पूरा हमारी समझ में आ रहा है। आप शंका मत करो। हम केवल आपकी भाषा बोल नहीं सकता। समझता सब कुछ है।" मुझे सान्त्वना देने के प्रयत्न से शिंग यू ताई ने भी कहा "मेरा साथी ने जो कहा ठीक है। हम दोनों साथ ही हिन्दी सीखता है। हमारी समझ में आपका बात आता है।"

मुझे अब संतोष हुआ। मैंने सोच रखा था, कि जो कुछ मैं बोल रहा हूं, उसे समझने में सम्भवतः उन्हें कठिनाई का अनुभव पड़े। मेरी सम्पूर्ण बातें वे न ग्रहण कर सकें। पर मैंने देखा वे मेरी कही हुई सिद्धार्थ की पूरी कहानी रुचि पूर्वक सुन रहे थे। उनकी मुद्रा भाव-भंगिमा बता रही थी कि वे सभी बातें समझ रहे थे। बीच-बीच में सिर हिलाकर मेरी बातों का समर्थन भी करते जाते थे।

काफी देर उन्हें आये हो गया था। मैंने कहा "अभी हम आ रहे हैं।" मैं ऊपर आया। "तीन गिलास नीबू का ठंडा शरबत बैठक में दे जाओ" अपने घर के नौकर जग्गू को मैंने आदेश दिया। पुनः मैं आकर उन लोगों के साथ बैठ गया। इधर उधर की बातें चलने लगीं। शरबत आ गया। मेरे आग्रह से उन्होंने उसे पीना स्वीकार किया। बीच-बीच में वे कहते जाते थे "आप बहुत ही भाग्यवान हैं। आपका जन्म हमारे भगवान के देश में हुआ है। हम लोग तो समुन्द्र पार पड़ गया। आप उस स्थान के पास हैं जहां भगवान ने अपना पहला दीक्षा दिया। आप तो बहुत जानता हैं भगवान के बारे में।

हम लोग शरबत का गिलास खाली कर चुके थे। उनकी जिज्ञासा आगे की बुद्ध की जीवनी सुनने की थी। मैंने इधर उधर की बातों में कुछ समय गुजारा।

वे बुद्ध की शिक्षा के विषय में पूरी बातें जान गये थे।

——

बौद्धाः बुद्ध इति प्रमाण पटवः....

"अब सिद्धार्थ कुमार के बचपन की दो एक प्रचलित कहानियों की ओर आपका ध्यान आकृष्ट करना चाहता हूँ।" मैंने कहा "यह आपको रुचिकर प्रतीत होगी।" "आप कहें"।—शिग यू नाई ने कहा।

"बचपन के दिन थे। कुमार सिद्धार्थ अन्य शाक्य कुमारों सहित विस्तृत शाल वन में मृगया के निमित्त जाते। वे सफल सवार थे। उनके जैसा तीव्र एक भी घुड़सवार मित्र मंडली में न था। वे जब घोड़े को तेजी से एड़ लगा दौड़ाते, तब वह हवा से बातें करता प्रतीत होता। उसके नथुने फूल उठते और वह हांफने लगता। दया से उनका हृदय पसीज उठता। परिश्रम के कारण अश्व तेजी से सांस ले रहा है। वे सोचते "यह जीव है। इसके पृष्ठ पर बैठने से इसे कष्ट हुआ।" वे घोड़े को रोक देते। विचरण करते हुए मृग उनके नेत्रों के सम्मुख से जाते। वे अपलक उनके शरीर की सुन्दरता निहारते रहते। उनके टेढ़े-मेढ़े लहरिया दार सींग के सम्बन्ध में कल्पनायें करते। जब अन्य शाक्य कुमार तर्कश से बाण निकाल कर धनु-खंग पर चढ़ा निरीह मृगों को मारते, उनके मुख से 'आह' निकल जाती। वे आंख बन्द कर लेते। यह तीर

मृग को न लग उनके हृदय को वेधते थे। प्रायः दुःखी हो वे लौट आते। उनका हृदय करुणा से भर जाता।

एक दिन राजउद्यान में राजकुमार सिद्धार्थ प्रकृति निरीक्षण कर रहे थे। नील गगन में अनेक पक्षी-गण झुंड बना-बना कर निर्भय हो विचरण कर रहे थे। झींगुर की वासन्ती झंकार स्पष्ट सुनायी पड़ रही थी। अन्य पक्षी गण कूक रहे थे। सिद्धार्थ इन्हीं सबको ध्यानावस्थित हो देख रहे थे। सुगन्धित पुष्प भीनी-भीनी गन्ध को पवन में मिला सम्पूर्ण उद्यान सुवासित कर रहे थे। इसी वातावरण में एक धवल पंख धारी अपूर्व हंस छटपटा कर गिरा। स्पष्ट था कि किसी की निष्ठुरता का शिकार यह मूक पक्षी हुआ था। उसके अंग बाण से बिंध गये थे। बाण उसके अङ्ग से लटक रहा था। वह अपने परों को फड़फड़ा उठने का प्रयत्न करता। वह असक्त हो चुका था। कुमार सिद्धार्थ ने इस दृश्य को दूर से देखा। वे दौड़कर आये। इस अर्द्ध मृत्यु प्राप्त मूक जीव के दुःख से उनके हृदय में जीवन में पहली बार वेदना का संचार हुआ। इसे उन्होंने उठा लिया।

सिद्धार्थने अपनी कोमल कलाई में उस नीरीह पशु के शरीर को बेंधने वाले बाण को चुभोया। उनके आंखों से झर-झर आंसू बहने लगा। वे दुःख में विह्वल हो गये। कितनी पीड़ा होती है, किसी को कष्ट देने में। इन्हीं विचारों में वे लीन थे। उस श्वेत पंख वाले भोले पक्षी को वे अपनी गोद में रख कर हर प्रकार से उसे सुख पहुँचाना अपना कर्तव्य समझ रहे थे। उसके दुग्ध से श्वेत पंखों पर रक्त की लाल रेखायें खिंच गयी थीं। उन्होंने अपने कटि प्रदेश में बंधे बहुमुल्य वस्त्र से उसके ध्वस्त शरीर को पोछा।

इसी बीच देवदत्त ने आकर उन पर व्यंग्य करते हुए कहा—"सिद्धार्थ यह मेरा शिकार है। इसे मत छूओ। अपने कभी शिकार करते नहीं। जब किसी जीव को देखते हैं, तो दया से द्रवीभूत हो जाते हैं। दूसरे द्वारा किये गये बृहत्तर कार्य को अपना बनाकर ख्याति अर्जित करना चाहते हैं। यह अच्छी बात नहीं। मैंने इस हंस को घायल किया। इस पर मेरा अधिकार है। मुझे अविलम्ब वापस करो।"

सिद्धार्थ पर जैसे इन बातों का कोई प्रभाव ही नहीं पड़ा हो। हंस की ग्रीवा को अपने कोमल कपोल पर रख कर, उसे आराम देना अपना पहला कर्तव्य समझ, इसी कार्य में वे लीन रहे। पुनः देवदत्त को उत्तर दिया—"देवदत्त! यह निरीह पक्षी आकर मेरे नेत्रों के सम्मुख यहां पुष्पों के बीच गिरा है। शायद तुम्हीं ने इसके शरीर को बेधा है। मैं इसे कदापि भी नहीं वापस कर सकता। यदि इसका जीवन नष्ट हो गया होता, यह मृत्यु को प्राप्त होता तो मैं सहर्ष इसे तुम्हें वापस कर देता। पर इसकी श्वांस अभी चल रही है। इसमें जीवन के चिन्ह हैं। इसकी रक्षा करना मैं अपना कर्तव्य समझता हूँ। मेरा हृदय इसे तुम्हें देने को नहीं कर रहा है। तुम इसको नष्ट कर दोगे।" ऐसा कह, अपने उत्तरीय के पट से वस्त्र फाड़ उन्होंने उसके घाव को बाँधा और तुरत ही उसकी सुरक्षा के उपाय जो वे कर सके, करने में तत्पर रहे।

"यह कदापि भी नहीं होगा। यह मेरा शिकार है। मेरे तीर से घायल हुआ है। मैं इसे अवश्य लूंगा।" देवदत्त ने सरोष कहा।

सिद्धार्थ ने उत्तर दिया—"इसका जीवन विनष्ट हो जायगा। मेरे रहते ही इसका प्राण तुम ले लोगे। तुम्हारे हृदय में दया नहीं। कुछ सोचो। तुम्हारी तरह यह भी जीव है। इसको भी आ·····"

इसके पहले कि सिद्धार्थ अपनी बात पूरी करें उनके चचेरे भाई देवदत्त ने आवेश में आकर कहा—"मेरा यह शिकार तुम दे दो। नहीं तो महाराज के पास मुझे जाना होगा और तुम्हारी शिकायत करनी होगी। परिणाम ठीक न होगा।"

"ठीक है। महाराज का ही निर्णय मान्य होगा।" सिद्धार्थ ने कहा।

ऐसा ही हुआ। भरी सभा में इसका निर्णय किया जाने लगा। सम्पूर्ण राज्य के श्रेष्ठीगण एकत्र हुए। लोगों ने दोनों के मत में अपनी बातें कहीं। कुछ ने सिद्धार्थ के पक्ष की, कुछ ने देवदत्त के पक्ष की कही। इसी बीच एक श्रेष्ठ ब्राह्मण कुमार ने अपने विचार रखे। वह अवतारी पुरुष था। जीवन का महत्त्व अधिक है। संहारी से रक्षक का कार्य अधिक महत्त्व का है। कोई किसी निरीह पक्षी के जीवन से साथ खिलवाड़ करता है। यदि उसकी रक्षा किसी सहृदय व्यक्ति द्वारा होती है, और उस पक्षी के प्राण बचा लिए जाते हैं, तो वास्तव में प्राण दाता को ही अधिकार उस पक्षी पर है। क्रूर बाणों से छेदन करने वाले कुमार का नहीं। एक स्वर से लोगों ने उसके इस निर्णय को अन्तिम और मान्य बतलाया। वह दिव्य पुरुष विलुप्त हो गया।

कुमार सिद्धार्थ के हृदय में पहली बार करुणा की धारा बही। वे समझने लगे दुःख किसे कहते हैं। सत्य की विजय हुई।

अब मैं दूसरी कहानी सुना रहा हूँ।

महाराज शुद्धोधन ने कुमार को अन्य किसी दिन वसन्त उत्सव में सम्मिलित करने के निमित्त उन्हें अपने साथ लिया। अपनी राजधानी के कृषी-स्थान का निरीक्षण कराने के निमित्त स्वयं अपने महामात्यों सहित वे वहाँ गये। आज उत्सव का आयोजन था। महाराज स्वयं अपने हाथों

आज हल चलाने वाले थे। रत्न जटित जुए से युक्त १०७ बैलों की जोड़ियों से जुते हुए हल के पास वे खड़े थे। अन्य महामात्यगण भी उनके आस-पास वाले बैलों के निकट चमोटी लिए बैल हाँकने का शुभा-रम्भ करने की बाट देख रहे थे। महाराज के हाथों में सुनहली मुठिया से युक्त चमोटा था।

भगवान बुद्ध को राजा के निकट स्थित एक घने जम्बु वृक्ष की सघन छाया में बैठा दिया। अनेक रक्षक तथा धात्रियां उनकी सेवा में लीन थीं। वे सुसज्जित वितान के नीचे बैठ कोमल आसन पर विराजमान हो इन कृत्यों को जीवन में पहली बार देख रहे थे। उनके रक्षक और धात्रियाँ भी वितान से बाहर निकल इस उत्सव के आयोजन को देख रही थीं।

सिद्धार्थ को वातावरण अत्यन्त आकर्षक लगा। कृषक तथा मजदूर नवीन वस्त्र धारण किए हुए अपने सुनक बैलों के कंधों पर भार स्वरूप जुआ डाले हुए खेतों को लहरियादार जोत रहे थे। आकाश में पक्षीगण कूजन कर रहे थे। पास ही किसी तालाब के निकट होने के कारण अनेक पशु गण इधर-उधर लुक-छिप, कभी-कभी टहलते हुये दिखायी पड़ जाते थे। मयूर अपने रंग-विरंगे पंख फैलाये नाचने का प्रयास कर रहे थे। वृक्षों में नयी कोपलें निकल आयी थीं। घास हरित आभा लिये चमक रही थी। फूल निकलने प्रारम्भ हो गये थे।

पास ही कलरव करती हुई तीव्र धारा वाली झील का शब्द स्पष्ट सुनायी पड़ रहा था।

तोते उड़ रहे थे। शुक-पिक अपने आकर्षक छोटे हरे पंख फैला उड़ने का अभ्यास नील-गगन में कर रहे थे। अनेक पक्षी गण टोलियाँ बाँध-बाँध कर स्वच्छन्द हो विचरण कर रहे थे।

महाराज स्वयं अब हल की मुठिया पकड़ इस छोर से उस छोर तक घूम आते थे। उनके पुष्ट बैल चले जा रहे थे। कुमार ने पसीने से लथ-पथ किसानों को और दिन-दिन भर धूप में परिश्रम करने वाले मजदूरों के श्रम को जीवन में पहली बार देखा था।

इधर यह सब कृत्य चल रहा था। कुमार के पास कोई भी न था। वे उठे। पद्मासन लगाया। ध्यानावस्थित हो बैठ गये।

उन्होंने श्वांस रोक रक्खा था। धीरे-धीरे समय बीता। प्रातःकाल बीत चला।

धूप तीव्र होती जा रही थी। वृक्षों की छाया लम्बी पड़ने लगी। धात्रियों और चाकरों ने आश्चर्य सहित देखा। वितान तने जम्बू वृक्ष की छाया प्रारम्भिक छाया की तरह ही गोल है। उनके आश्चर्य का ठिकाना न रहा। वे दौड़ कर भीतर आये। कुमार पद्मासन लगाये बैठे थे। राजा को सूचित किया गया। वे दौड़कर आये। उनके साथ उत्सव के मध्य में ही सभी महामात्य भी आये। वे सिद्धार्थ की इस मुद्रा को देख अवाक् रह गये। उनके आश्चर्य की सीमा न रही। सभी इस परम शांतिदायक मुद्रा के सम्मुख नत मस्तक हो गये। महाराजने स्वयं इस परम सौम्य सिद्धार्थ मुख से प्रस्फुटित होने वाली ज्योति के सम्मुख श्रद्धानत हो चरण स्पर्श किया।" इतना कह मैंने देखा शिग यू नाई तथा चाइ तू शु ग दोनों बौद्ध भिक्षु ऐसी भाव मुद्रा में थे जैसे महाराज शुद्धोधन के साथ भगवान सिद्धार्थ के उस पद्मासन मुद्रा का दर्शन कर रहे हों। उनकी तन्द्रा भंग हुई जब मैंने उनसे आगे कहा—"इन कहानियों से आप लोगों को ज्ञात हो गया होगा कि भगवान सच्चे दयालु थे। उनके हृदय में प्रत्येक जीव के प्रति करुणा थी। बचपन में ही पवित्रता की

महान देन से उनका हृदय भर चुका था।

चाई तू शुंग ने धीरे से कहा—"आपने जो कहानी सुनाया, यह बहुत अच्छा लगा। ऐसा जानना मालूम भगवान का साक्षात दर्शन हम कर रहा है। पहली कहानी बड़ा अच्छा था। दूसरी कहानी में एक बात आपसे पूछना कि गौतम बुद्ध वृक्ष के नीचे पद्म आसन क्यों लगा कर बैठ गया।"

मैंने कहा सुनिये "वही तो मैं आपको बता रहा हूँ। इस बात पर हमारे बड़े-बड़े बौद्ध विद्वानों का मतभेद है। कुछ विद्वान कहते हैं कि बुद्ध ने एकांत स्थल पा अपने चमत्कारिक रूप का प्रदर्शन करने के लिये ऐसा किया। उन्होंने लोगों को अपने वश में करने के लिए, ऐसा करना उचित समझा। वे अवतारी पुरुष थे। उनके लिए कोई कठिनाई न थी। दूसरे विद्वानों का मत है कि जम्बू वृक्ष के आस-पास जिस करुणा मय वातावरण का दर्शन कुमार सिद्धार्थ ने किया, उसके परिणाम स्वरूप उनके हृदय में विराग उत्पन्न हुआ। उन्होंने देखा पशु पक्षी एक दूसरे के रक्त और मांस को खाने में नहीं हिचकते। एक दूसरे की हत्या कर वे आनन्द का अनुभव करते हैं। इसी प्रकार अन्य परिश्रमी मनुष्यों को भी देखा। उन्होंने तुरत ही कुछ सोचने के लिए यह मुद्रा ग्रहण की। विद्वानों मत है कि देव गण उनके कृत्य से साश्चर्य उनका अभिवादन करने के लिए आये।"

शिंग यू नाई ने कहा—"भगवान सोचता बहुत था। वह एकांत देख चिन्ता करता था।"

मैंने कहा—"जी ! हाँ"

"आगे और कहें" ताई चू शुंग ने कहा

"अच्छा" कह मैंने आगे की कहानी प्रारम्भ की।

———

दान भोग भवं सुखम्

मैं आगे कह रहा था।

"कुमार सिद्धार्थ का बचपन अब बीत चला। उनकी किशोरावस्था समाप्त हुई। वे यौवन की देहली पर खड़े थे। अन्य शाक्य कुमारों की भांति वे केवल स्वप्न मात्र ही नहीं बनाते। उन्हें विराग हो गया था। एकांत सेवन में वे रुचि लेते। सांसारिक दुःखों के कारण वे त्रस्त रहते। यहां तक की प्रासाद के बाहर वे निकलते तक न थे। अपने चिन्तन में वे खोये-खोये से रहते। लोगों की आंख छिपा राजमहल के किसी खंड में सम्पूर्ण समय वे न जाने क्या सोचते रहते। जब कभी महाराज शुद्धोधन इस प्रकार देखते वे चिन्ता में चूर होकर सोचते, "क्यों सिद्धार्थ दिन-रात भावुक बना रहता है? अन्य कुमारों की भांति वह सांसारिक सुखद वस्तुओं में लिप्त क्यों नहीं होता? जब वह देखते तभी कुमार सिद्धार्थ उन्हें किसी गम्भीर चिन्तन में लीन दिखाई देता। उनके दुःख का यह सबसे बड़ा कारण था। उन्होंने अपने महामात्यों से विचार विमर्श करने का निश्चय किया। इसी ध्येय से उन्होंने गुप्त प्रमुख विश्वासी बुद्धिमान महामात्यों की समिति संयोजित की। उनके परामर्श के उपरान्त

उन्होंने सिद्धार्थ को सांसारिक आकर्षण की सुन्दर स्वर्णिम जंजीरों में बाँधने का निश्चय किया।

कुमार को आकर्षित करने के लिए उन्होंने सभी प्राप्य आकर्षण के साधनों को एकत्र किया। तीनों ऋतुओं के लिए तीन विशाल महल सिद्धार्थ के लिए महाराज ने निर्मित करवाये। गर्मियों के लिए शीतल श्वेत चमकीले पत्थरों का नक्काशीदार महल शिल्पियों ने बनाया। विस्तृत वाटिका का निर्माण किया गया। शाल-वन में पुराने-पुराने वृक्षों को काटा गया। उस युग के विख्यात काष्ठ प्रासाद कला के विशेषज्ञों ने अपने पूरे परिश्रम से शीत जाड़े के लिए गर्म रहने वाला महल तैयार किया। नील पट्टिकाओं से निर्मित आकर्षक वर्षा-आवास गृह निर्मित किया गया। प्रमुख राज-प्रासाद के उपरान्त इन्हीं महलों का सम्पूर्ण राज्य में सुन्दरता की दृष्टिकोण से स्थान था। कुमार सिद्धार्थ इन्हीं प्रासाद में रहने लगे। स्वच्छन्द हो विचरण करते। वे एकांत चिन्तन में अब भी लिप्त रहते।

महाराज ने अपने राज्य की सुन्दरियों को उनकी देख रेख के लिए रखा। राज्य की नवयौवना कोमल खिलखिलाती कली की भांति खिली नवेली नर्तकियाँ अपने नृत्य से उनका मनोरंजन करतीं। मधुर स्वर में सुन्दर गीत गाने वाली गायिकायें जिनका रूप किसी को भी आकर्षित कर सकता था, दिन रात वीणा के तार के साथ अपनी लय झंकृत करती रहतीं। अन्य वाद्य यंत्र की ध्वनि भी कुमार सिद्धार्थ के कर्ण को शीतल करने के लिए बजती। रास रचे जाते। कन्हैया बनने के लिए उन्हें बाध्य किया जाता। अलंकृत नटियाँ गोपिकायें बनतीं। पर कन्हैया को कोई आकर्षण उनकी ओर झुकने का न दिखायी पड़ता। पुनः वे देवता की भांति रत्न जड़ित आभूषणों से अलंकृत किये जाते। पर उनके लिए सब व्यर्थ था।

फिर भी महाराज ने कुछ उठा न रखा। जो भी इनके वश में था, उन्होंने किया। कभी-कभी कुमार सिद्धार्थ इन आकर्षणों में कुछ क्षणों के लिए लिप्त भी हो जाते। पर उनका मन वास्तव में रमता न था।

इन सब कृत्यों को देख लोग सोचते सिद्धार्थ विलासी बनता जा रहा है। सुगन्धित सर के नील जल में सैकड़ों पंकजों के मध्य घिरे हुए भृङ्ग की भांति, उसका जीवन रसमय बन गया है। वह रस पान में ही लीन है। कला क्या है, इससे वह अपरचित है। रण क्षेत्र में वह कैसे वैरियों का सामना कर सकेगा। सम्भव है वह जीवन भर रास रंग में ही फंसा रहकर, अपने अतीत के वीरोचित गौरव को विनष्ट कर दे। ऐसी अनेक भ्रान्त धारणायें उनके अनय मित्र राजकुमारों के मन में भी आ गयी थीं।

यह बात महाराज शुद्धोधन के कान तक पहुँची। वे सब कुछ सहन कर सकते थे, पर अपनी भर्त्सना कदापि नहीं सुन सकते थे। वे योग्य शासक थे। उन्हें अपनी प्रतिष्ठा का सम्मान सब कुछ त्याग कर भी रखना था। महाराज ने सिद्धार्थ से कहा—प्रिय वत्स! लोग मुंह पीछे तुम्हारी निन्दा करते हैं। कहते हैं पिता ने पुत्र को भोगी बना दिया। वह विलासी बनता जा रहा है। क्या तुम यह सुनने के लिए तैयार हो! तुम्हारे जैसा कलावन्त गुणी राजकुमार एक भी इस समय यहाँ नहीं। लोगों की शंका को अवश्य दूर करना होगा।''

सिद्धार्थ कुमार ने जब यह सुना तो झूठे लांछन के कारण उन्हें दुःख भी हुआ, साथ ही क्रोध भी। उन्होंने नम्र स्वर में पिता से कहा—"तात, कोई भी दिन निश्चित कर दें। सम्पूर्ण राज्य में यह घोषित कर दें कि उक्त तिथि को कुमार सिद्धार्थ अपनी कला और शस्त्र विद्या का प्रदर्शन

करेगा। सभी लोग इस आयोजन में सम्मिलित हों। यदि कोई कुमार अथवा अन्य व्यक्ति गौतम से प्रतिद्वन्द्विता करना चाहता है, तो वह उसे सहर्ष स्वीकार है।"

सम्पूर्ण राज्य में यह घोषणा की गयी। सातवें दिन कुमार अपनी अस्त्र विद्या का प्रदर्शन करेंगे। सभी लोगों की उपस्थिति अनिवार्य है। जो भी चाहे कुमार से निःसंकोच स्पर्धा कर सकता है।

कहा जाता है कि सातवें दिन सम्पूर्ण राज्य के नागरिक, महामात्य गण, महाराज तथा अन्य व्यक्ति उपस्थित हुए। उनके समक्ष सिद्धार्थ ने अपनी अपूर्व चमत्कारिक कला का प्रदर्शन किया। लोगों के आश्चर्य का ठिकाना न रहा। सिद्धार्थ ने जिस प्रकार धनुर्विद्या के सधे निशानों का प्रदर्शन तथा बाण का आघात किया, वह दर्शनीय था। कुछ अन्य शाक्य कुमार उनकी प्रतिस्पर्धा के लिए आये। पर एक भी सफल न हो सका। विजय श्री सिद्धार्थ का पाँव चूम रही थी। उन्होंने एक क्षण में अपने असि से एक शक्तिशाली वृक्ष को केवल एक वार के आघात से टुकड़े-टुकड़े कर डाला। उनके शारीरिक बल के सम्मुख कोई भी न टिक सका। जिन लोगों ने भ्रान्ति धारणा सबके मध्य फैला रखी थी, वे बुरी तरह कोसे जा रहे थे। लोग उनकी विविध प्रकार भर्त्सना कर रहे थे। प्रतिस्पर्धी लोग खड़े-खड़े मुँह ताक रहे थे। लोग उनकी खिल्ली उड़ा रहे थे। सम्पूर्ण राज्य में कुमार के शौर्य और पराक्रम की चर्चा छिड़ी थी। लोग सोचते महाराज के बाद कुमार के हाथ में जब शासन सूत्र पड़ेगा, वह उसे और दृढ़, शक्तिशाली और विस्तृत बनायेंगे। उनके राज्य में प्रजा सुख और चैन की वंशी बजायेगी।

अपने कला प्रदर्शन के बाद सिद्धार्थ सीधे अपने आवास स्थल प्रासाद में आये ! महाराज तथा अन्य महामात्यों ने उनके इस वीरोचित सम्मान की भूरि-भूरि प्रशंसा की। जनता प्रफुल्ल थी। पर सिद्धार्थ पर इसका कुछ भी प्रभाव न पड़ा। वे आए एकान्त में बैठ पुनः किसी विचार में निमग्न हो गये। विरागी की भाँति वे मौन होकर सोचा करते। न जाने कौन सी चिन्ता उनके हृदय में व्याप्त थी। उसी में वे खोये रहते।

अब अपने सबसे वृद्ध मन्त्री को महाराज ने बुलाया। उन्होंने सिद्धार्थ के इस विराग की बात महामात्य को सुनायी। महाराज शुद्धोधन चिन्ता में लीन हो उनसे, उनकी ऐसी सम्मति जाननी चाही जिससे सदा के लिए कुमार सिद्धार्थ का चिन्तनशील स्वभाव परिवर्तन हो जाय।

वृद्ध मन्त्री ने नम्रतापूर्वक उत्तर दिया, "महाराज! अब कुमार विवाह योग्य हो गये हैं। संसार के बन्धन में वे अपने आप ही आ सकते हैं। किसी तरुण के हृदय को जीतने के लिए किसी रमणी के नेत्रों के कोर के संकेत बहुत हैं। कोई ऐसा आयोजन करें, जिसमें कुमार अपनी जीवन-संगिनी चुन लें। राज्य की तथा आस-पास की समस्त राज कुमारियों को कभी आमन्त्रित करें। जिस भाग्यशालिनी की ओर कुमार का आकर्षण देखें। उसके साथ सिद्धार्थ को मंगल-सूत्र में आबद्ध कर दें। जीवन भर सांसारिक सुखों में आबद्ध करने के लिए इन आकर्षक प्रसाधनों की आवश्यकता नहीं, वांछित जीवन संगिनी के सघन कजरारे केश के केवल दो ही पतले कच उन्हें इनमें बाँध सकने में सफल होंगे।"

वृद्ध मन्त्री का यह परामर्श राजा को अति उत्तम लगा। उन्होंने ऐसा ही करने का आयोजन किया।"

चाई नू शु'ग बोल उठे—"आप भगवान के विवाह के विषय में हमको बतायेंगे। हमें समझा दें कि कैसे महाराज का विवाह हुआ।"

मैंने कहा—"हाँ, मैं वही तो आपको बतलाने जा रहा हूँ। आप सुनते चलें।"

वे कुमार सिद्धार्थ के मंगलमय परिणय सूत्र में आबद्ध होने की कहानी सुनने के लिए उतावले हो रहे थे। उन दोनों बौद्ध भिक्षुओं के मुख पर जिज्ञासा के भाव देखे जा सकते थे।

मंगलं भगवान विष्णु: मंगलं गरुडःध्वजः....

मैंने आगे भगवान बुद्ध के विवाह की कहानी प्रारम्भ की। मैंनेकहा, आज राज-प्रासाद में सैकड़ों राजकुमारियाँ एकत्र थीं। कुमार स्वयं अपने हाथों भाण्ड वितरण करने वाले थे। कुमारियाँ अपना शृङ्गार कर रूप-लावण्य की अनुपम स्वर्गीय धारा बिखेर रही थीं। जिधर जाती उधर ही लोगों की आँखें उठ जाती। उनके पैरों को महावर से रंगा गया था। आभूषणों से उन्होंने अपने अंग-प्रत्यंग सजाये थे। उनके नयनों के कोरों पर काजल की पतली काली सीधी रेखा खींची गयी थी। मस्तक पर सुन्दर तिलक लगाया गया था। सभी प्रकार सुवासित हो आकर्षक वेश-भूषा धारण कर वे कुमार के आगमन की नत-नयनों से बाट देख रही थीं। इस अवसर पर कोलि राजनन्दिनी दण्डपाणी नरेश की कन्या गोपा भी पधारी थीं। महामहिषी सभी राजकुमारियों का स्वयं स्वागत कर रहीं थी।

महाराज ने अपने उसी वृद्ध मंत्री को नियुक्त किया और उन्हें आदेश दिया कि आप देखें कि जिस समय गौतम कुमारियों को भाण्ड वितरण कर रहा है, किस भाग्यशाली रमणी के भाग्य उदय होते हैं।

किसे वह अपलक नत-नयनों से सलज्ज देख रहा है। उसके ओष्ठ किस नवबाला को देख फड़क उठते हैं। आप उसकी इन गति विधियों का सूक्ष्म निरीक्षण करें। ज्योंही आपको ज्ञात हो कि गौतम इस रमणी पर रीझ गया, उसको उसने अपने हृदय में प्रतिमूर्ति बना ली, तुरन्त आप संकेत से मुझे सूचित करें।

भाण्ड-वितरणोत्सव प्रारम्भ हुआ। सजे सजाये स्फटिक मंच पर कुमार सिद्धार्थ आसीन थे, उनके सम्मुख रत्न-जटित, अमूल्य आभूषण, दीप्ति विस्तरण करने वाले मूल्यवान वस्त्र तथा अन्य सामग्रियाँ भाण्ड में वितरित करने के लिये रखी गयी थीं। एक-एक कर कुमारियाँ उनके सम्मुख होकर गुजरतीं। वे उन्हें भाण्ड वितरित करते। कुमारियाँ लज्जा से झुककर अपने कोमल हाथों को फैला देतीं। कुमार नत-नयनों से किसी-किसी की ओर देख भी लेते थे। वे बहुमूल्य उपहार सामग्री उन्हें देते। वे चली जातीं।

सबके अन्त में कोलि-राज-नन्दिनी यशोधरा कुमार के सम्मुख आयीं। न जाने क्यों वर्षों से दबी यौवन सुलभ मुस्कान सिद्धार्थ के गुलाबी ओठों पर खिल आयी। उनका यौवन जागृत हो उठा। कबसे कोलि-नन्दिनी उनके सम्मुख सिमिटी, सिकुड़ी खड़ी थी। वह अपने यौवन के भार से बोझिल हो रही थी। नत-नयनों से वह अपने लम्बे कोमल पद अंगुष्ठ नख से स्फटिक शिला पर रेखा चित्र खींच रही थी। कुमार जागृत अवस्थामें भी सुषुप्त थे। वे श्रेष्ठ सुन्दरी का रूप-रसपान अपने नयनों से कर रहे थे।

जब वृद्ध महामात्य ने उन्हें कुमारी को भाण्ड अर्पित करने का

आदेश दिया, तब उनकी तन्द्रा टूटी। वे लज्जित हो अपने पास रखे उपहार वस्तु को उठाने के लिये झुके। पर एक भी भाण्ड अब शेष न था। अब भी राजकुमारी उसी प्रकार खड़ी नत-नयनों अपने भृकुटियों को कभी कभी कंपित कर देती।

कुमार ने अपने कंठ से मणि-माल उतार उसे राज नन्दिनी के कंठमें डाल दिया। कोलि कुमारी के हृदय में एक अपूर्व सिहरन उत्पन्न हुई, जिसने उसके अंगों को हलका सा झकझोर दिया! कुमारी के फुल्ल कपोल हलके लाल हो गये। ओष्ठ पर क्षीण मुस्कान की रेखा अंकित हो गयी। सिद्धार्थ के प्रति उसके हृदय में तो पहले से ही आकर्षण उत्पन्न हो चुका था।

जब महाराज ने सुना कि कोलिनन्दिनी कुमार सिद्धार्थ के हृदय को जीत सकी, वह उनको अपने आकर्षक यौवन के पास में बाधने में सफल हुई, तब उनकी प्रसन्नता की सीमा न रही। महाराज के हृदय में उत्साह की एक लहर दौड़ गयी।

महाराज ने अपने कुल पुरोहित से यह शुभ-संदेश सादर कोलि नरेश महाराज दंडपाणि के पास प्रेषित किया। दंडपाणि महाप्रजावती तथा कपिल वस्तु राज्य की राजमाता के अग्रज थे। उन्होंने जब इस सुखद समाचार को सुना, वे प्रफुल्ल हो गये। उनकी प्रसन्नता की सीमा न रही। उन्होंने सहर्ष अपने कुल पुरोहित अर्जुन को महाराज शुद्धोधन के पास अपनी स्वीकृति का सुखदायी संदेश प्रेषित किया।

शुभ वेला में एक अच्छा मुहूर्त विचारा गया। कोलिनन्दिनी और कुमार को परिणय सूत्र में आबद्ध किया गया। दोनों राज्यों की

प्रजा ने खुलकर उत्सव और आमोद मनाया। परिणय संस्कार के समय १११ प्रमुख वेद अध्ययन पूर्ण कर्मकाण्डियों ने सम्पूर्ण वातावरण को वेद ध्वनि से गुञ्जरित कर दिया। सविधि विवाह सम्पन्न हुआ।

महाराज दण्डपाणि ने लोगों का अपूर्व सहर्ष स्वागत किया—कुमार सिद्धार्थ उनके भांजे नहीं, बल्कि उनकी प्रियपुत्री के पति हो गये थे। विदाई के अवसर पर उन्होंने सैकड़ों हाथी, घोड़े द्रव्य, मणिमाला इत्यादि तथा धन-धान्य महाराज को अर्पित किया। मनसा, वाचा, कर्मणा उन्होंने अपनी पुत्री को आशीर्वाद दे कपिलवस्तु के लिये विदा किया।

भाग्यवान महाराज शुद्धोधन और महामहिषी प्रजावती ने पुत्र बधु पाया। उनको अब चिन्ता न थी। उनको अब पूर्ण विश्वास था कि सिद्धार्थ अब सांसारिक सुखों में अवश्य ही रह जायगा। उनकी आशालता पल्लवित हुई। यही सिद्धार्थ के विवाह की कहानी है।

दोनों बौद्धभिक्षु अपने आराध्यदेव की मंगल गाथा सुन प्रसन्न हो रहे थे।

शिंग यू नाई ने अनुरोध के स्वर में कहा—'आप थोड़ा और सुनायें।' अच्छा होता आज ही सारी बात हम जान जाय।

मैंने कहा, ''यह तो मैं पहले ही कह चुका हूँ कि एक दिन में ये बातें कदापि समाप्त होने को नहीं। आपके अनुरोध पर केवल आगे एक अंश और मैं आज कह रहा हूँ।

वे पुनः दत्त चित्त हो मेरी बातें सुनने लगे।

अस्मिन निःसार संसारे

मैंने आगे पुनः कहानी प्रारम्भ की। मैं कह रहा था—सिद्धार्थ का विवाह हुआ। कांति-कुमारी कपिलवस्तु की राज्य-लक्ष्मी बन गयीं। कुमार सिद्धार्थ यद्यपि महालक्ष्मी गोपा के साथ रहते, पर जब एकान्त पाते, अवश्य कुछ न कुछ सोचते। चिंतन में लीन रहते। सांसारिक आकर्षण के आयोजनों को विचारते। आत्मा और परमात्मा की व्याख्या अपने मन में ही करते। उनकी समझ में कुछ भी स्पष्ट रूप से न आता।

जब महाराज ने देखा कि सिद्धार्थ पुनः अपने पूर्व मार्ग का अनुसरण कर रहे हैं, न जाने क्यों वह वियोगी बने रहते हैं तो पुनः उन्होंने एक नवीन महल निर्मित कराया। इस महल में कामोद्दीपन की सभी श्रेष्ठ सामग्रियाँ एकत्र की गयीं। रूप-यौवन-सम्पन्न धात्रियाँ उनकी सुश्रुषा के लिये रखी गयीं। कामोत्तेजक भोज्य पदार्थ उनको भोजन में दिये जाते। हर प्रकार से उन्हें प्रसन्न रखने की कोशिश की जाती। पर उन्होंने किसी में भी रुचि न ली। हाँ, कभी-कभी उनको इन आकर्षणों में अपनी प्राणेश्वरी गोपा के आग्रह पर

सम्मिलित होना पड़ता। जब वे इन कार्यों से विरत होते, पुनः एकान्त साधन में लीन हो जाते।

अब कुमार की किशोरावस्था भी बीत चली। वे पूर्ण यौवन को प्राप्त हो चुके थे। कौमार्य में सांसारिक आपत्तियों की ओर उनका ध्यान न गया था। वे अभी तक दुःख क्या है, जानते न थे। संसार की किसी बात से भी वे अनभिज्ञ न थे। उनकी अवस्था अब अट्ठाइस साल की हो चुकी थी।

आज न जाने क्या उनके मन में आया कि उन्होंने नगर भ्रमण की इच्छा व्यक्त की। महाराज यह सुन अत्यन्त प्रसन्न हुए। शीघ्र ही चार श्वेत घोड़ोंवाले रथ पर सवार होकर वे नगर निरीक्षण के लिए निकले।

जिधर से भी होकर गौतम का रथ गुजरता जय जयकार की ध्वनि से आकाश गूँज उठता। नगर तोरण बंदनवारों से सुसज्जित किया गया था। चारों ओर उत्साह का वातावरण छाया हुआ था। प्रजागण उनके ऊपर अपनी अट्टालिकाओं से पुष्प वृष्टि करती। अश्व रथको सारथी के संकेतों पर तेजीसे खींचते चले जा रहे थे। इसी बीच राज मार्ग पर एक वृद्ध पुरुष दिखलाई पड़ा। उसका जीवन बीत चुका था। मृत्यु और जीवन के मध्य वह राजमार्ग पार कर रहा था।

वह उसांसे भर रहा था। गौतम की दृष्टि उस पर पड़ी। "सारथी रथ रोको" सिद्धार्थ ने आज्ञा दी।

रथ रोक कर सारथी ने सविनय निवेदन किया "आज्ञादेव!"

"यह कैसा व्यक्ति है छंदक!" सारथी को संबोधित कर कुमार

ने कहा—इसके शरीर में रक्त मांस शेष नहीं। ढाँचे के रूप में इसकी हड्डियाँ ही अब शेष रह गयी हैं। नसें इसके शरीर के ऊपर उभर आयी हैं। यह लाठी टेक कर क्यों चल रहा है। इसका कटि प्रदेश झुका हुआ क्यों है। इसके केश मुन्ज सदृश श्वेत क्यों हो गये हैं। क्यों यह कृसकाय है ?"

छंदक ने नम्रता पूर्वक उत्तर दिया, 'देव ! यह सामान्य मनुष्य नहीं है। इसका जीवन अब बीत चला है। जरा ने इसे आ घेरा है ! इसकी इन्द्रियाँ अब कर्म योग्य नहीं। शिथिलता इसके अंग प्रत्यंग में व्याप्त हो गयी है। कोई काम इससे नहीं हो सकता। इसके बन्धु-बान्धवों ने इसको अयोग्य समझ गृह से निकाल दिया है। इसके जीवन का अब कोई मूल्य नहीं।"

"क्या सबके जीवन में यह दिन आता है, छंदक" कुमार ने चिंतत हो सारथी से पूछा—क्या हमारी और संसार के अन्य लोगों की भी यही गति होगी'

"हाँ देव" छंदक ने उत्तर दिया "जीवन की तीन अवस्थाएँ हैं। बचपन, यौवन और बुढ़ापा। सभी को तीनों अवस्थाओं में होकर भ्रमण करना पड़ता है। इस संसार में जो भी व्यक्ति जन्म धारण करता है, वह अवश्य ही जरा को प्राप्त होता है। इसी वृद्ध को केवल जरा नहीं प्राप्त हुई है। आपको इस संसार को एक न एक दिन इस रूप में अवश्य जीवन के कष्टों को झेलना होगा। यौवन के उपरांत इस अवस्था का प्रारम्भ होता है। देव, इससे कदापि भी कोई बच नहीं सकता।"

रथ खड़ा था। कुमार सोच में लीन थे। इसके पहले उन्होंने समझा ही नहीं था कि क्या-क्या कष्ट जीवन में झेलने होंगे। वे सोचते थे, सर्वदा इसी प्रकार सुख की बंशी का रव सुनते-सुनते जीवन व्यतीत होता रहेगा। वे सोच रहे थे — 'मैं जीवन में सफल न हो सकूँगा। यही जरा-ग्रस्त कष्ट मुझे भी घेरेगा। नहीं....नहीं....कदापि नहीं। मैं इससे अवश्य बचूंगा। चाहे जैसे भी हो। मैं इसका निदान निकालूँगा। क्या सचमुच एक दिन इसी अवस्था में आना है। तो जीवन की सुखमय क्रीड़ा केवल दिखावटी है। केवल दर्शन के लिये है! क्षणिक आनन्द के लिये है! सब ढोंग है!! लेकिन इसका कोई उपाय तो होगा। उसे अवश्य ज्ञात करना होगा।"

"सारथी! रथ वापस करो" प्रासाद की ओर छंदक ने रथ को मोड़ा। सिद्धार्थ उतर कर सीधे अपने निवास स्थल में आये। गहरी चिंता में निमग्न हो, वे अपने को भूल गये। कई दिन तक उनकी यही स्थिति रही।

इसी बीच महाराज को किसी धात्री ने यह सुसमाचार सुनाया, "देव! महालक्ष्मी गोपा गर्भवती हैं। उनको शीघ्र ही पुत्र रत्न की प्राप्ति होगी।"

महाराज शुद्धोधन की प्रसन्नता की सीमा न रही। उनका जीवन सफल हो गया। उनकी आकांक्षाएँ पूरी हो गयीं। जिसके लिये युगों से आस लगाये थे, वह स्वप्न साकार हो गया। अपने प्रिय पुत्र की संतान के मुख को शीघ्र देख लेने की प्रसन्नता में वे विह्वल होने लगे। सम्पूर्ण राज्य में जिसे भी यह समाचार सुनायी पड़ता, वह प्रसन्न हो

जाता। जगह-जगह मंगल गीत गाये जाते। नित नये-नये आयोजन होते। इधर कुमार सिद्धार्थ की भावनाओं की परवाह किसी को भी न थी। सब अपने-अपने रंग में मस्त थे।

कुछ दिनों बाद सिद्धार्थ पुनः उपवन बिहार के निमित्त राजमार्ग से होकर जा रहे थे। उनका सारथी छंदक रथ को तीव्र गति से चला रहा था। घोड़ों के टापों की सम्मिलित ध्वनि कानों में "टप-टप" सुनायी पड़ रही थी। संयोग से उनकी दृष्टि एक ऐसे व्यक्ति पर पड़ी, जिसका जीवन रोग से विनष्ट हो चुका था। वह मृत्यु की घड़ियाँ गिन रहा था। सिद्धार्थ ने रथ रोक सारथी से कहा "छंदक! यह व्यक्ति क्यों विवर्ण हो गया है। इसका शरीर कृश क्यों है। इसके तन में रक्त की एक बूंद भी है, या नहीं, मुझे शंका हो रही है। इसकी इंद्रियाँ इसका साथ क्यों नहीं देतीं? इसके मुख पर आशंका की छाप क्यों है"

"नाथ!" छंदक ने नतमस्तक हो कहा—"यह पुरुष रोगी है। इसका शरीर घुल गया है। इसका जीवन अब विनष्ट होने वाला है। कभी भी अब यह नहीं बच सकता। इसका कोई भी संरक्षक नहीं। बल-वीर्य विहीन मांस के लोथड़े की भांति यहां यह पड़ा हुआ है। इसे व्याधि हो गयी है।" रथ बढ़ता चला जा रहा था। सिद्धार्थ सोच रहे थे, "व्याधि भी कोई जीव है। क्या इसको दूर नहीं किया जा सकता। वह क्यों इस प्रकार लुढ़क गया था।" अनेक भावनाएँ उनके मन से आकर टकरातीं। पर वे जितना ही सोचते उतना ही और चिंता उन्हें ग्रस्त करती।

लुम्बिनी वन से विहार कर कुमार सिद्धार्थ लौट रहे थे। वे प्रसन्न

थे। कभी-कभी उस व्यक्ति का ध्यान आ जाता। तब वे निमग्न हो सोचने लगते।

रथ प्रासाद की ओर अभिमुख था। पुनः सिद्धार्थ की दृष्टि एक अपूर्व दृश्य पर जा गड़ी। उन्होंने देखा कुछ व्यक्ति छाती पीट-पीटकर रो रहे हैं। उनका विलाप किसी को भी द्रवीभूत कर सकता था। चार व्यक्तियों ने अपने कंधे पर न जाने क्या श्वेत वस्त्र में लिपटा कर ले रखा था। अपने कौतुहल की स्वान्त्वना के लिये सिद्धार्थ ने छंदक से पूछा- "ये लोग रो क्यों रहे हैं, छंदक! इन्होंने अपने कंधे पर ले क्या रखा है? इसे श्वेत वस्त्र में क्यों लिपटाया गया है?"

छंदक ने कहा—"नाथ! जिस व्याधि से पीड़ित व्यक्ति को अभी आपने देखा था, उसकी मृत्यु हो गयी! उसने अपने शरीर को त्याग दिया। उसकी आत्मा उसकी काया को त्याग अन्यत्र कहीं चली गयी। उसके स्वजन तथा स्नेही उसका दाह संस्कार करने के निमित्त, उसे धवल वस्त्र में लपेट सम्मान उसकी दाह क्रिया के निमित्त उसे ले जा रहे हैं।"

कुमार की चिन्ता और बढ़ गयी। उन्होंने सोचा मनुष्य उत्पन्न होता है। बचपन खेलने-खाने बीतता है। यौवन में वह स्वप्न बनाता तथा केलि क्रीड़ा करना अपना सर्व प्रमुख व्यापार समझता है। पुनः जरा के दुःखमय कष्टों को झेलता है। अन्त में व्याधि घेरती है और वह सदा के लिये काल के मुख में चला जाता है। वृद्धावस्था में तथा व्याधि से पीड़ित रहने पर कोई उसके पास भी नहीं जाता। जब उसकी आत्मा उसके शरीर को त्याग देती है, कलट-कलट कर वह मर

जाता है, तब उसके स्नेही और स्वजन उसका सम्मान करते हैं। विलाप करते हैं। बिलखते हैं। सब ढोंग है। संसार केवल दिखावा है। उसमें सुख नहीं। चारों ओर अंधकार है। दस दिनों की ज्योति, पुनः अंधेरा ही अंधेरा। ऐसा अंधेरा जिससे शीघ्र निकलना कठिन है। इस संसार से मुक्ति का मार्ग प्राप्त करना होगा। संसार को निर्वाण दिलाना होगा। ये ही विचार उनके मन में एक-एक कर उठ रहे थे।

रथ अब आवास के सन्निकट था। पुनः सिद्धार्थ ने देखा, 'एक व्यक्ति शांत चित्त स्थिर नेत्रों से किसी ध्यान में निमग्न हो एकान्त वास कर रहा है। उसने काषाय वस्त्र धारण किया है। उसके हाथ में भिक्षा पात्र है। वह विचारवान प्रतीत हो रहा है।"

कुमार ने उसके सम्बन्ध में सारथी से संकेत से पूछा। 'यह विरागी है, देव ! इसे संसार की मोह-माया की चिन्ता नहीं। निर्वाण प्राप्ति की खोज में विचरण कर रहा है।" सारथी ने नम्रता पूर्वक कहा "यह आत्म शांति की खोज में है। सांसारिक दुःखों का ज्ञान इसे हो गया है। इसे किसी की चिन्ता नहीं। कोई भी वस्तु इसे दुःख नहीं दे सकती।"

कुमार के मुख पर प्रसन्नता की रेखा खिंच गयी। उन्होंने कहा "तो विरागी का जीवन सबसे सुखी है। वह अवश्य अपनी आत्मा को मुक्त दे सकेगा। मैं भी परिव्राजक बनूँगा। संसार को इस कष्टदायक मार्ग से मुक्ति दिखाऊँगा। केवल अपने निर्वाण से कार्य न होगा।"

"यह क्या कह रहे हैं, देव ! आपके लिये यह शोभा नहीं देता।" छंदक ने आवेदन किया।

रथ आकर प्रासाद के मुख्य द्वार पर रुका। सिद्धार्थ अपने आवास में आ गये। उन्हें आज संतोष का अनुभव हो रहा था।" मैंने कहा "यही सिद्धार्थ के यौवन और बचपन की कहानी है।"

मैंने स्पष्ट देखा। शिंग यू नाइ तथा चाइ नू शूंग दोनों भिक्षु मेरी बातों पर पूरी तरह गौर कर रहे थे।

आगे मैं कुछ कहूं, इसके पहले ही मेरे घर की ज्योति, पद्माकर आकर अपनी बाल-सुलभ वाणी में बोला—"आपू जी आज कालेज नाइ जायें दे।" "नहीं भाई जाना है। छुट्टी आज नहीं है।" मैंने घड़ी में देखा दस बज रहा था। ग्यारह बजे कालेज लगता है।

दिन काफी चढ़ आया था। "तो तब जायेंदे।" उसने कहा। उसकी कोटी तुतली वाणी सुन सभी हँस पड़े। उसने कहा "अपी आपने स्थान भी नहीं थिया। देर हो तायेगी, तब।"

वे लोग भी अब थक गये थे। मुझे भी अब कालेज की जल्दी लगी थी। इस बात को सुन, वे लोग जाने को तैयार हो गये। उन्हें देर भी हो रही थी।

मैंने शिष्टाचार के नाते कहा—"भोजन तैयार है, आप लोग यहीं कर लें।

शिंगयूनाइ ने नम्रता पूर्वक उत्तर दिया—"जी! हमारा भोजन वहाँ आपका मित्र भिक्षु जो कल मिला था, बना कर हमारा बाट देखता होयेगा।" आज आज्ञा दें।

मैं उन्हें पहुंचाने सड़क तक आया। मोटर में बैठा कर नमस्ते किया। कल उनसे आने की मैंने प्रार्थना की। घर आया। मुझे कालेज की जल्दी लगी थी। किसी तरह जल्दी से भोजन कर कालेज भागा।

गृहं त्यक्त्वा सुखी भवेत....

मैं कल कालेज कुछ देर से पहुंचा। प्रिंसिपल अग्निहोत्री छुट्टी में भी अतिरिक्त कक्षा लगवाते हैं। कल उनसे प्रार्थना भी करनी पड़ी। मैं आज प्रातःकाल उठा। उनकी प्रतीक्षा कर रहा था। वे अभी तक नहीं आये। बारामदे में मैं टहल रहा था। सड़क में गाड़ी का हार्न बजा। रघुनाथ भिक्षुओं को लेकर आ गया। मैं बैठक में चला आया। मैंने हँसकर उनका स्वागत किया, "आइए, आपलोगों की मैं प्रतीक्षा कर रहा था।"

"कल आपको कालेज को देर हो गया होगा।" बैठते हुए शिंगयूनाई ने कहा।

"जी नहीं। ज्यों ही मैं कालेज पहुंचा कक्षा प्रारम्भ हो रही थी। मैं अच्छी तरह छात्रों को पढ़ा सका।" मैंने कहा।

"कल तो आपने बड़ा सुन्दर सिद्धार्थ का जीवन सुनाया।" ताई चू शूंग बोला—"आज कौन बात बतलायेगा आप ?"

"आप सुनें। मैं आगे सुना रहा हूं। पहले महाभिनिष्क्रमण की कहानी कह रहा हूं।" मैंने कहा, और आगे की कहानी प्रारम्भ की कुमार सिद्धार्थ के गृह आगमन की बात मैं बता चुका हूं। प्रासाद में

आकर पुनः मृत्यु और जीवन के गहन विचारों पर वे सोचने लगे। तपस्वी को देख उनके हृदय में सन्यास लेने की प्रवृत्ति जागृत हो गयी थी। संसार उन्हें निःसार दिखाई पड़ा। वे घृणा की दृष्टि से सभी आकर्षण के साधनों को देख रहे थे. इसी मध्य एक धात्री ने अन्तःपुर से आकर उन्हें अत्यन्त प्रसन्न हो यह सुसमाचार सुनाया—"आर्य ! महालक्ष्मी के गर्भ से पुत्र उत्पन्न हुआ है। धात्री का प्रणाम स्वीकृत हो।"

'तो यह एक और राहु उत्पन्न हुआ, मुझे ग्रसने के लिए।" निःश्वास ले कुमार ने कहा।

महाराज के कानों में यह खबर पहुँची। उनकी प्रसन्नता की सीमा न रही। अपने जीवनमें वे पुत्र के दर्शन के लिए तरस रहे थे. कहाँ पौत्र की किलकारियाँ भी सुन सकेंगे। वे फूले नहीं समा रहे थे। उनका हृदय बांसों उछल रहा था। प्रसन्न हो उन्होंने कहा—"क्या सिद्धार्थ इस मंगल संदेश से अवगत हैं।"

"हाँ। महाराज" महामात्य ने कहा उन्होंने कहा 'यह राहु पैदा हुआ है।'

प्रसन्नता के आवेग में महाराज कुछ भी न सुन रहे थे। उन्होंने निश्चिन्त हो कहा' तो मेरे पौत्र का नाम 'राहुल-कुमार' होगा।" दुंदुभी बजी। तोरण-वन्दन से राजमहल सजाया गया। इतना बड़ा उत्साह कपिलवस्तु नगरी में सम्भवतः कभी भी न देखने को मिला था। नृत्य-रंग भोज-भंग का अपूर्व आयोजन किया गया। सब प्रसन्न थे। सिद्धार्थ भी संसार को दिखाने के लिये अपने मुख पर एक हास्य की रेखा खींच ही लेते।

आज वे नगर भ्रमण के लिए निकले। एक प्रवीण नवयौवना रमणी ने जो 'कृशा-गौतमी' नाम से विख्यात थी, बोधिसत्व की रूप माधुरी से प्रभावित हो, रस उड़ेलती हुई बोली- "आपका स्वरूप धन्य है। आपके इस शान्तिदायक आनन का दर्शन कर पिता, माता, पत्नी सभी शांति का अनुभव कर अपने को धन्य समझते होंगे।"

सिद्धार्थ ने विचारा "शांति ! शांति !! चारों ओर शांति !!! पर किसी को ज्ञात नहीं, कहाँ शांति मिलती है। वह है क्या वस्तु, किसने उसका निर्माण किया। सभी अथाह मायारूपी सागर में छटपटा रहे हैं, पर वे शांति का अनुभव करते हैं। उन्हें आत्म-तोष होता है। राग-द्वेष यौवनआकर्षण ये सभी सांसारिक पाश हैं। जब तक इनसे मैं सम्पूर्ण संसारको मुक्त न करूँगा, आराम न करूँगा। मैं अवश्य ही निर्वाणकी खोज करूँगा। चाहे जैसे भी संभव हो। आज ही मुझे दत्तचित्त हो इस कार्य को प्रारम्भ करना चाहिए। यह रमणी मेरी धर्म-गुरु है। इसकी शिक्षा से मैं निर्वाण पथ पर अग्रसर हूंगा।" यह विचार करके सिद्धार्थ ने उस चपल नवयुवती को अपने कंठ का मुक्ताहार भेंट किया।

मंद तथा अधम बुद्धि रमणी ने सोचा, "सिद्धार्थ मेरे यौवन पर आकर्षित हो गये हैं। मैं उन्हें अवश्य ही अपना बनाऊँगी।" उस मंद बुद्धि को ज्ञात न था कि यह सिद्धार्थ उसे आज अपनी मार्ग प्रदर्शिका के रूप में देख रहा है। इसी कारण कहा गया है "नारी तुच्छ बुद्धिवाली नागिन है।"

यह राहुल के जन्म के आठवें दिन की कहानी है। सिद्धार्थ अपने

प्रासाद को लौटे। आज उनके आनन पर एक गंभीरता दिखलाई पड़ रही थी। राग-रंग प्रारम्भ हुए। मदिरा-पान करनेवाली नर्तकियाँ मदमत्त हो मयूरी की भांति अपने कटि-प्रदेश को कंपित कर सिद्धार्थ के सम्मुख रास रचने लगी। आज उन्हें कुछ भी न रुचा। निःसीम गगन के चमकते तारे अंगारों के शोलों की भांति उनके नेत्रों में जल रहे थे। यह सुहावनी रात्रि जिसका श्रृङ्गार नील-निस्तब्ध गगन में निशाकर त्याग कर रहा था, उन्हें केवल एक पानी के नष्ट होनेवाले बुलबुले के सदृश अस्थायी दिखाई पड़ा। विभिन्न वाद्यों के सम्मिलित स्वर उन्हें आज तनिक भी आकर्षित न कर सके। वे कर्ण-कटु प्रतीत हो रहे थे। सिद्धार्थ ने आज खाद्य सामग्रियों की ओर दृष्टिपात भी न किया। न जाने क्यों इस गंभीरता को उन्होंने अपने मुख पर धारण कर रखा था। कुमार आज शीघ्र ही अपने शयन कक्ष में प्रविष्ट हुए। कोमल शैया पर लेटे। वातावरण विकच कुसुमों की गंध से सुरभिमय था। उन्हें निद्रादेवी ने आ घेरा।

शीघ्र ही नींद से वे जग गये। पास की वाटिका चंद्रारूपी चमकते कटोरे की धवल दुग्ध चाँदनी का पान कर रही थी। सिद्धार्थ उठे। सोचने लगे, "मैं सांसारिक सुखों का आज परित्याग करूँगा। गोपा अपनी प्राणनन्दिनी का साथ छोड़ूँगा। शीघ्रता करूँ। सम्पूर्ण संसार आज इस रात्रि में सो रहा है। उसे ज्ञात नहीं, उसका बचपन बीतेगा। यौवन स्वप्निल आकांक्षाओं से पूरित होगा। जरा घेरेगी। अन्त में कष्टों को झेलते वह काल का आहार हो जायगा। आत्मा परमात्मा का उसे ज्ञान तक न होगा। अपनी क्षुद्र आकांक्षाओं की तृप्ति में वह

मारा-मारा फिरेगा। आध्यात्मिक उन्नति कदापि भी संभव नहीं। उनका आत्म-ज्ञान विनष्ट हो चुका है। मैं आज जागरूक हो गया हूँ। कृशा-गौतमी ने मुझे आज शांति का अमर संदेश दिया है। वह धन्य है। वह मेरी सच्ची गुरु है। उसके आशीर्वाद से मेरी जय निश्चित है। अर्द्ध रात्रि बीत चली। शीघ्रता आवश्यक है। अन्यथा लोग जग जायेंगे।"

वे शयन कक्ष से निकल आमोद गृह में प्रविष्ट हुए। मद्धिम टिम-टिमाते सुवासित सुगन्धित प्रदीप के जलते हुए वर्तिका के प्रकाश में उन्होंने देखा, 'अभी-अभी जिन नर्तकियों ने मुझे प्रसन्न करने के लिये न जाने कौन-कौन सा नट रास रचा था, उनकी लुभावनी मूर्ति, केवल मांस का लोथड़ा मात्र है। कोई रूप नहीं! कोई यौवन नहीं! साज शृङ्गार के बल ये सबका मन जीत अपने पावों की पूजा करवाती हैं। प्रस्वेद से सिंचित इनका आनन ....! जीभ से टपकती लार........ ......! राक्षसी की भांति निकले हुए किसी के दांत ...! इनके वाद्य से भी मधुर कंठ से निकले स्वर .... ! ये क्रोधित सर्प की भांति खर्राटें क्यों भर रही हैं? सुषुप्तावस्था में कुछ भी ध्यान किसी को नहीं। नारी की सबसे अमूल्य वस्तु उसकी लज्जा खनकते कंठ हारों और मुक्ता-माल पर विनिमित होती है। धिक्कार है इस संसार को। उनके अंग के वस्त्र निद्रा निमग्न होने के कारण अनेक लज्जा स्थल से हट गये थे। कुमार का हृदय इन दिखावट बनावट और वास्तविकता का अन्तर ज्ञात कर घृणा से भर गया। वे क्षण मात्र भी वहाँ नहीं रुक

सकते थे। जग सोया था। वे जागते हुए, आगे बढ़कर अपने प्रिय सारथी छंदक के कक्ष में पहुंचे।

छंदक आहट पा उठ बैठा। इतनी रात गये कुमार को अपने कक्ष में प्रथम बार आया देख वह सोचने लगा—'क्या कारण है? क्यों कुमार आज इतनी रात्रि गये जाग रहे हैं?

"छंदक! आज अश्वराज कंथक को अभी ले आओ, मुझे गृह त्याग करना है।" कुमार ने आज्ञा दी। छंदक आज्ञा पा तुरन्त अश्व-गृह में चला गया। सिद्धार्थ की माया न मानी। वे शाक्य सिंहासन की युवराज्ञी यशोधरा के कक्ष की ओर अभिमुख हुए। कक्ष में पहुंचते ही उन पर माया ने आक्रमण किया। उन्होंने देखा "गोपा पुष्प सदृश्य कोमल-सुगन्धित शय्यापर निद्रा निमग्न हो पड़ी है। आठ दिन का नन्हा पुत्र राहुल माता के वक्ष से सटा सो रहा है। शयनागार में दीपक प्रदीप्त हो रहा है! उस पर पतंगे मंडरा रहे हैं। धीमी ज्योति फूट रही है। सिद्धार्थ ने सोचा, "मैंने भी तो इस रूपवान जीवन संगिनी पर इन्हीं पतंगों की भांति अपना सब कुछ निछावर करने का निश्चय कर लिया था। ये पतिंगे इस प्रकाश में जलकर मिट जाते हैं। मैं भी तो गोपा के चमकते आनन पर निछावर हो रहा था। उसका और मेरा परिणय संस्कार हुआ। जीवन एक प्रेम के अनंत धागे में बांध दिया गया। जीवन भर मुझे उसका साथ देना चाहिये। भारतीय नारी के शास्वत प्रेम का परिणाम मेरा सुत भी तो सोया है। क्या इसके प्रति मेरा कोई भी कर्तव्य नहीं। नन्हा अबोध यह पुत्र! इसका रूप मेरे ही सदृश तो है। मेरे प्राण का यह एक नन्हा जगमगाता अंश है। इसका

अरुण कमल सा कोमल शरीर ! कातर लम्बे विशाल नेत्र '''' ! यह तो मन को बरबस आकर्षित कर लेता है। अधर फूले पल्लव के मध्य शोभित पुष्प सा है। यह अबोध शिशु है। मेरा प्राण ! मेरी आत्मा ! पुत्र रत्न की माया। कहीं जाने का जी नहीं करता। विराग छोड़ूँ। संसार अपनों के लिए दुःखी है। क्या यह मेरा नहीं। सुन्दर गोपा मेरी प्राणेश्वरी नहीं ? अवश्य है ! तो विकार है वैराग्य। नहीं ''''''नहीं यह ढोंग नहीं। सोये हुए जगत के लिये मैं ज्ञान का मार्ग ढूँढने के लिये कटिबद्ध हूँ। विचलित होना विश्वासघात होगा।"

ऐसा सोच, अपने पुत्र के कपोलों का चुम्बन लेने के लिये कुमार सिद्धार्थ झुके। गोपा ने अपनी बाहों में पुत्र को कस लिया था। कहीं जग न जाय, पुनः अवरोध उठेगा। ऐसा विचार कर सिद्धार्थ एकाकी अपने मार्ग पर चल दिये।

कौन जानता था, आज इस विजन नीरव रात्रि में गोपा का सर्वस्व छिन रहा था। उसका प्राणपति भारतीय नारी की सबसे सबल सम्पत्ति उससे छिनी जा रही थी। एकाकी पथ का पथिक सिद्धार्थ अपने भावुक कलाकार की कल्पना से भी कोमल शिशु को गोद में ले खिला भी न सका। उसके गुलाबी होठों के चुम्बन के लिये वह तरसता चला गया। किसे ज्ञात था, महाराज शुद्धोधन की सबसे बड़ी आशा और विश्वास की लता आज मुरझा गयी। कोई इससे अवगत न था कि महा प्रजावती जिसे अपने रक्त के खून से भी अधिक महत्व देती थी, वही सुत आज समस्त समाज, प्रजा, राज-प्रासाद को

तिनके के सदृश समझ, निःसार घोषित कर, सबको लात मार ठुकरा कर चल दिया।

पर इतिहास साक्षी है, युगों से चली आ रही बौद्ध साधना आज साक्षात खड़ी हुंकार कर रही है "सिद्धार्थ के जाने से गोपा की मांग का सिंदूर और भी तीव्र ज्योति में परिणित हो गया। संसार ने उसके उपदेशों से त्राण पाया। उसका शिशु राहुल उसी के साथ इतिहास के पृष्ठों में आज अमर हो गया। महाराज शुद्धोधन ने उसी भाग्यशाली परिव्राजक के पिता कहलाने का गौरव प्राप्त किया। महा प्रजावती शीघ्र माता के रूप में तीनों लोक में याद की जायेंगी। साधना का परिणाम युगों तक जन-जीवन में ज्योति बिखेरता रहेगा।"

अब सिद्धार्थ कुमार अपनी पत्नि-पुत्र के कक्ष से निकल सीधे सिंह-द्वार पर आये। छंदक वहाँ खड़ा था। अश्व न था। सिद्धार्थ ने नम्रता पूर्वक सारथी से पूछा "अश्व कहाँ है, छंदक!"

दबी जबान से छंदक ने उत्तर दिया, "आर्य! आप यह क्या करने जा रहे हैं। रात्रि में कहाँ किस ओर जा रहे हैं, नाथ!" उसकी आंखों से अश्रु-धारा बह चली। सिद्धार्थ ने सोत्साह कहा "छंदक! तुम मेरे स्वजन हो। मैं तुम्हें कितना प्यार करता हूं, यह तुमसे छिपा नहीं। मेरे मार्ग के बाधक तुम मत बनो।"

कंथक के हिनहिनाने की आवाज आयी। शीघ्र छंदक जाकर अश्व को लाया। सिद्धार्थ उछल कर उसके पृष्ट भाग पर आरूढ़ हो चल दिये।

नगर में शांति का वातावरण छाया था। एकाकी चन्द्र सम्पूर्ण जग की

रखवाली जाग-जाग कर कर रहा था। कुमार अश्व पर चले जा रहे थे। छंदक पीछे कंथक अश्व की पुच्छ पकड़े लटका था।

सिद्धार्थ नगर के चमकते राजमार्गों से राज प्रमुखद्वार के बाहर निकले। संयोग से द्वारपाल सो गये थे। पर फाटक बन्द था। लाखों हाथियों का बल भी फाटक का कुछ न कर सकता था। कन्थक और छन्दक आसानी से कुमार सिद्धार्थ सहित फाटक को लांघ सकते थे। पर दैवयोग से फाटक अपने आप खुला। भगवान सत्पथगामी गौतम की सहायता हर प्रकार कर रहे थे।" सुनता कह मैं रुका। मैंने देखा, वे बौद्ध भिक्षु आज न जाने क्यों, कल से भी अधिक रुचि कहानी में ले रहे थे। शायद कुमार के गृह त्याग का विषाद उनके मन में दुःख उत्पन्न कर रहा था।

शिंग यू ताई, मुझे रुका देख बोलने लगा—"आप रुक क्यों गया! आज की कहानी तो भगवान का जीवन का सच्चा चित्र दिखाता है।"

मैं आगे की कहानी सुनाने लगा. जब सिद्धार्थ नगर से बाहर निकले उस समय पुनः माया और मारदेव ने उनकी बुद्धि बदलने के लिये उन्हें अनेक आकर्षण दिखाये। मार ने आकाश से कहा, "सिद्धार्थ! तुम्हें चक्रवर्ती सम्राट का आसन ग्रहण करना है। क्यों इस प्रकार गृह त्याग कर रहे हो। राज्य को लौट जाओ।" सिद्धार्थ के लिये राज्य नहीं, अपितु सम्पूर्ण संसार का आकर्षण नगण्य-सा था। उन्होंने विनम्र हो कहा—"मार! मुझे चक्रवर्ती सम्राट नहीं, बल्कि एक सामान्य परिव्राजक का जीवन यापन करना है। किसी दूसरे को तुम सम्राट बनाओ. उसका उपकार होगा।"

पुनः माया ने उनके हृदय में प्रेरणा उत्पन्न की नगर भ्रमण के निमित्त सिद्धार्थ के चित्त को पुनः राज्य-आकर्षणों में फंसाना चाहा। पर सिद्धार्थ सब कुछ त्याग चुके थे। उन्हें अब कोई भी आकर्षण तिल भर भी निश्चय से डिग न सकता था। माया मोह सब उन्होंने त्याग दिया था।

गृह-त्याग करने के पूर्व उनकी बातों में महाराज शुद्धोदन का दृढ़ विश्वास हो गया कि किसी भी प्रकार यह कुमार घर में नहीं रुक सकता। उन्होंने पिता से आज्ञा भी ली। दुःखी मन उन्हें आदेश भी देना पड़ा था।

सिद्धार्थ निशंक हो कंथक के पृष्ठ भाग पर आरूढ़ हो चले जा रहे थे। छंदक सारथी साथ था। जिस अश्व पर सिद्धार्थ थे, वह सामान्य घोड़ा न था। उसकी लम्बाई १८ हाथ थी। उसका रंग श्वेत रजत की भांति चमकीला था। अपने युग में वह अश्वराज घोषित हो चुका था। साथ ही उसकी गति तीव्र मारुत से भी बढ़कर थी। घोड़ा तीव्र गति से चला जा रहा था। चांदनी श्वेत-स्वप्न पुष्प बिखेर रही थी। देवगण पथ को प्रकाशित कर रहे थे। सघन शाल-वनों से होता हुआ अनेक शैल शिखरों को पारकर कंथक देवदह राज्य में पहुंचा। सिद्धार्थ को अनन्त स्थल पर पहुंचने की चिंता लगी थी। वे यहाँ भी न रुके। मार्ग में राम-ग्राम भी पड़ा। उन्होंने यहाँ भी रुकना उचित न समझा। एक गतिसे कंथक सिद्धार्थ और सारथी सहित भागता आबाध गति से चला जा रहा था।

सिद्धार्थ अपने राज्यसे अब तीस योजन दूर आ चुके थे। रावा के

मल्लों के राज्य के निकट अनोमा नदी पर आकर वे रुके। "आर्य हम अनोमा के निकट आ गये हैं।" छंदक ने बताया

यहीं पवित्र अनोमा मेरी प्रवज्या होगी। ऐसा मनमें विचार सिद्धार्थ ने पुचकार कर कंथक को एड़ लगायी। कंथक आकाश मार्ग में उड़ा। अनोमा जो सैकड़ों हाथ चौड़ी थी, उसमें तीव्रधारा उठ रही थी। नौकायें यात्रियों को आर-पार करने के लिये खड़ी थीं। कंथक उस पार हलके बादामी कछार की बालू के रेत पर जा उतरा।

बोधिसत्व अश्व-पृष्ठ से उतर आये! छंदक भी उतर चुका था। उन्हें न जाने क्या सूझी। अपने मणि खचित मुकुट वस्त्राभूषण आदि उतार छंदक को देकर कहा -'मेरे प्रिय छन्दक तुम कपिल वस्तु लौट जाओ।'

छंदक के नेत्रों में आंसू छल छला आये। रुंधे कंठ से उसने कहा- "आर्य! यह आप क्या कह रहे हैं। इन वस्त्रों को मुझे क्यों दे रहे हैं। मेरा अपराध क्षमा हो देव!"

"छंदक मैं अब यहीं से परिव्राजक बनने जा रहा हूं। संसार के लिये कल्याणकारी पंथ का अनुसंधान करने के निमित्त मैं साधना करने जा रहा हूं। तुम राज्य को लौट जाओ। वहां लोग घबड़ा रहे होंगे। तुम उन्हें ढाढ़स देना। मेरा प्रणाम तथा स्नेह सभी से कहना। "सिद्धार्थ ने कहा" तुम अब अवरोध मत उपस्थित करो! मैं बुद्धत्व प्राप्तिके बाद पुनः कपिलवस्तु तुम लोगों के लिये, अपने पारिवारिक जनों के दर्शन के लिये आऊंगा। उस समय मेरी दीक्षा तुम्हारे मार्ग को प्रशस्त करेगी! तुम्हें संतोष लाभ होगा।"

"मुझे भी नाथ परिव्राजक की एक प्रजा बना लें ।" विनीत स्वर में छंदक ने बिलखकर कहा—"मैं कौनसा मुख लेकर कपिलवस्तु जाऊँ । आर्य ! राम पिता की आज्ञा से तापस वेष धारण कर जंगल-जंगल फिरते रहे । आप कपिल वस्तु नगरी को सब प्रकार सूना कर चले आये ? अयोध्या के महामात्य सुमन्त श्रेष्ठ पुरुष थे । उन्होंने महाराज को, महा रानियों तथा अन्य लोगों को समझाया । मैं क्षुद्र बुद्धि वाला सारथी, क्या किससे, कैसे कहूंगा नाथ ! मुझे क्षमा करें । शरण में ले लें । जीवन आपके ही साथ यापित होगा , तात !"

"छंदक ! तुम्हारी और अश्वराज कंथक की उत्पत्ति मेरे इसी श्रेष्ठ कार्य के निमित्त हुई थी । क्या तुम चाहते हो वह वांछित अपूर्व कार्य पूर्ण न हो । तुम्हें प्रवज्या नहीं प्राप्त हो सकेगी । तुम चले जाओ मेरी बात मानो । मैं अवश्य कपिल वस्तु आऊँगा बुद्धत्व प्राप्ति के उप-रान्त" सप्रेम गौतम ने ढाढ़स बढ़ाते हुए छंदक से कहा !

अब छंदक हो जाने के लिये बाध्य हो गया । बोधिसत्व के चरणों की वंदना कर बिलखता हुआ वह राज नगर की ओर उन्मुख हुआ । उसका जीवन सार्थी कंथक इस दुःखद समाचार को सुन अपने प्राण त्याग कर स्वर्ग चला गया । अकेला छंदक कपिलवस्तु के लिये चला । दुःख से उसका हृदय फटा जा रहा था ! वह सोचता "मैं कितना बड़ा क्षुद्र हूं । कुमार को तपस्वी बनाया । प्रिय राज-अश्व का जीवन समाप्त किया ।" किसी प्रकार वह नगर में पहुँचा ।

कुमार सिद्धार्थ जिन्होंने सदा कोमल वस्त्र धारण किये थे, जिनके मस्तक पर सर्वदा राज-मुकुट सुशोभित रहता था सामान्य व्यक्ति की

भांति बढ़े चले जा रहे थे, अगम्य अनन्त पथ के पथिक की भांति ! अपने कोमल केशों को जिनका अपने यौवन काल में उन्हें विशेष मोह था, लटकती घुंघराली लटें तलवार की तीखी धारों से सिद्धार्थ ने काट डाली ।

उनके शरीर पर अब भी जो वस्त्र थे, वे कीमती रेशम के थे । उन्होंने देखा, एक वंचक तपस्वी बैठा कृत्रिम साधना कर रहा है । उसके काशाय-वस्त्रों को सिद्धार्थ ने अपनी इन रेशमी कीमती वस्त्रों से परिवर्तित कर लिया । कपिल वस्तु का कुमार कठोरता क्या है जिसने आज तक जानता तक न था, उसे परिव्राजक बनना पड़ा । वह प्रसन्न था, इसी वेश में वह आगे बढ़ा ।

छंदक जब नगरी में पहुँचा उसने सम्पूर्ण नगर को शोक की घनघोर काली घटा से आच्छादित देखा । उसके दुःख की सीमा टूट गयी । उसका कलेजा टूक-टूक होने लगा । नगरवासियों के विलाप सुन पाषाण-हृदय भी द्रवीभूत हो सकता था— वृद्ध महाराजा विह्वल हो रो रहे थे । महा प्रजावती तथा गोपा दोनों पीट-पीट विलाप कर रही थीं । धात्रियाँ नर्तकियां, गायिकायें सभी कुमार के विछोह में विरहिन बनी बिलम्ब रही थीं ।

छंदक ने सभी समाचार जाकर वृद्ध महामात्य से वर्णित किया । उसने बताया किसी भी प्रकार बोधिसत्व आने के लिये तैयार न थे । उन्होंने कहा कि यहाँ भी चारो ओर धावक सिद्धार्थ की खोज में गये, पर कोई न उनके चरण चिन्हों का पता पा सका । शायद अनोमा के आस

पास उनका दर्शन हो सके। तुरन्त ही आदमियों को भेजा गया। पर वे न मिले! अनन्त मार्ग की ओर वे अग्रसर हो चुके थे। परिव्राजक किसी एक स्थल का वासी नहीं। सम्पूर्ण संसार उसका परिवार है। पृथ्वी उसका शयन-आसन है। विस्तृत आकाश उसका आवरण! सिद्धार्थ न मिले। पर छंदक की इस बात से अभी लोगों को आशा बंधी थी। बुद्धत्व प्राप्ति के उपरांत उनकी दर्शन अवश्य कपिलवस्तु में होगा। इसी आशा से सभी लोग आशान्वित हो उनके बाट देखा करते। जिस प्रकार पतझड़ के दिनों में शुष्क पुष्प डालियों से भौंरे इस आस पर लटके रहते हैं कि पुनः वसंत ऋतु आयेगी, वृक्ष नयी कोपलें धारण करेंगे। उनमें पुष्प लगेंगे। पुनः सुवासित वातावरण होगा। हम रसपान में लीन होंगे। ठीक यही स्थिति कपिलवस्तु वासियों की थी। वे सोचते पुनः कुमार सिद्धार्थ शीघ्र जब लौटेंगे। उनका सविधि तिलकोत्सव सम्पन्न होगा। उत्सव मनाया जायगा। राग-रंग का आयोजन होगा। फिर वही राज्य होगा। हमारे कुमार हमारे महान राज्याधिपति होंगे! गोपा हमारी महा-राज्ञी होंगी। वृद्ध महाराज राजर्षि आश्रम ग्रहण करेंगे। राहुल कुमार मृगया करेंगे। यह रही सिद्धार्थ के राज्य त्याग के उपरान्त की कपिलवस्तु की कहानी। उनके माता पिता पत्नी दुःख में इतने तल्लीन थे कि उनको कुछ ध्यान ही न था! शोक सागर में वे डुबकी लगा रहे थे। मैंने कहा।

ताई चू शूंग ने कहा, "भगवान कानगर सूना हो गया। वह आगे क्या किया। बतावें आप! कहाँ वे गये?"

"पूरी बातें यदि आप लोगों के समक्ष में न आयें तो मुझसे तुरन्त पूछ लें।" मैंने कहा। मैं अभी बोधिसत्व के जीवन के आगे की कहानी प्रारम्भ करूंगा।

"जी मैं पूरा समझता है।" दोनों बौद्ध भिक्षुओं ने कहा।

साधवो नहिं सर्वत्र....

"कुमार सिद्धार्थ काशाय वस्त्रधारण कर, अनन्त पथ की ओर अग्रसर हुए। जीवन में कभी कष्टों का अनुभव आज तक उन्हें न हुआ था। पर वैराग्य सांसारिक सुखों का परित्याग है। वैराग्य प्राप्ति के लिये मचिन्तित हो अनोमा नदी के निकट 'अनूपिया' नामक आम्रवन के उसी प्रदेश में एक सप्ताह तक रुके। कोई मार्ग न देख, वे आगे बढ़े। इस स्थान को छोड़ने के पूर्व उन्हें शाक्या तथा पद्मिनी नामक ब्राह्मणियों का आतिथ्य भी स्वीकार करना पड़ा था। आगे महर्षि रेवत के आश्रय में परिव्राजक के रूप में गौतम प्रविष्ठ हुये। गौतम का सादर सत्कार महर्षि ने किया। वहाँ उनका मन न लगा। महर्षि से विदा ले उनका आशिर्वाद ग्रहण कर सिद्धार्थ त्रिभदंडिक पुत्र राजक के आवास पर आये। राजक का आतिथ्य ग्रहण कर वे भिक्षाटन करते हुए वैशाली के प्रसिद्ध नगर में पहुँचे। मगधराज्य में विख्यात विद्वान आचार्य 'आराल-कालाम' विद्यापीठ स्थापित कर रहते थे। लगभग २०० विद्वान छात्र इस विद्यापीठ में आचार्य की देखरेख में विद्याध्ययन करते थे। सघन शाल-वृक्षों के मध्य घिरे इस विद्यापीठ में अनेक विद्वान् प्राध्यापक शिक्षा देते थे। गौतम का आगमन सुन, आचार्य के प्रसन्नता

की सीमा न रही। उन्होंने हृदय से स्वागत कर उनको अपने आश्रम में रुकने के लिए प्रेरित किया। गौतम कुछ दिन तक इस ब्रह्मचर्याश्रम में रुके भी। वेद, शास्त्र दर्शन आदि के ज्ञाता गौतम का मन इस आश्रम में न लगा। जितना उन्हें ज्ञान था, उतने ही आचार्य भी जानते थे। उन्होंने सोचा इतने से मुझे ज्ञान का आलोक न प्राप्त होगा। उन्होंने नम्र स्वर में आचार्य से कहा—"देव! मुझे आज्ञा दें। मैं अपने पथ पर अग्रसर होना चाहता हूँ।"

आरालकालाम ने कहा—"नहीं आर्य। आप श्रेष्ठ हैं। यहीं रुकें। इन छात्रों को अपनी मेधावी प्रतिभा का प्रसाद दें। हम आप मिल ब्रह्मचारियों को उच्च दर्शन, व्याकरण योग की शिक्षा से सम्पन्न कर सकते हैं। आप आज से आश्रम के आचार्य हुए।"

सिद्धार्थ ने विनीत भाव से कहा—"आचार्य मुझे आप आशीष दें। संसार को मायाजाल से छुड़ाने के लिये किसी मार्ग की खोज मुझे करने दें। आपने मुझे 'आकिंचायतन' धर्म की शिक्षा दी। आप मेरे पूज्य बन गये हैं। विशेष मुझे लज्जित न करें।" 'समाधितत्व' के सूक्ष्म विश्लेषण आपकी कृपा से मुझे ज्ञात हो गये हैं। शांति की खोज में मैं अब आगे चलूँगा।

गौतम के हठ के आगे आचार्य की एक भी न चली। उन्होंने बोधिसत्व को सप्रेम बिदा किया। सिद्धार्थ आगे बढ़े। वे अब गिरिव्रज नामक नगर (राजगृह) में आ गये। यह मगध की राजधानी थी। महाराज बिम्बसार यहाँ के सम्राट थे। पर्वतों के मध्य में बसी यह नगरी सभी प्रकार सुख-समृद्धि से परिपूर्ण थी। एक एकांत पर्वत श्रेणी

पर अपना निवास स्थान निश्चित कर सिद्धार्थ भिक्षा पात्र ले भिक्षाटन के निमित्त इस नगर में आये। नगरवासी उनके अनुपम रूप सौन्दर्य का नयन-पान कर स्तब्ध रह गये। लोग सोचने यह कोमल शरीरवाला भाग्यवान पुरुष परिव्राजक के रूप में क्यों मधूकरी माँग रहा है। इसे तो किसी राज्य का राजकुमार होना चाहिये था। अवश्य यह कोई अवतारी पुरुष है। इस आकर्षण ज्योतित रूप का पुरुष पहले इस नगर में नहीं दिखलाई पड़ा था।

बोधिसत्व अपने भिक्षापात्र को हाथ में लिए किसी गृह के सम्मुख खड़े थे। "भिक्षां देहि" उन्होंने उच्चारित किया। गृह से खाद्य सामग्री उनके पेट भरने के लिए मिली। वे चल दिये। लोग आश्चर्य चकित थे। उन्हें और भी देना चाहते थे। "यह मेरी क्षुधा-तृप्ति के लिये अधिक है।" ऐसा कह गौतम अपने गन्तव्य मार्ग की ओर चल दिये। वे आश्रम पर आ चुके थे।

उन्होंने अपने मन में विचारा, मैं किस कुल में उत्पन्न हुआ था। मेरे भोजन करते समय हजारों व्यक्ति मेरी सुश्रूषा में लगते थे। मेरा मनावन होता था। मिष्ठान्नाचाफल और विभिन्न प्रकार के रुचिकर व्यंजन मुझे अप्रिय लगते थे। मैं गौतम था। आज बोधिसत्व हूँ। दर-दर का भिखारी मात्र मुझे लोग कहते हैं। कैसे इस सूखे अन्न को कैसे ग्रहण करूँ। पर जब इस पथ पर चला, तो कष्टों को झेलना ही होगा। यह विचार उनके मन में उठा। अब वे भोजन कर रहे थे।

जब महाराज बिम्बसार को यह ज्ञात हुआ, वे स्वयं गौतम के आश्रम के निकट आये। उन्होंने इस अलौकिक रूप को देखा। एक

अज्ञात प्रेरणा से प्रभावित हो बोधिसत्व के चरणों में नतमस्तक हो बिम्बसार महाराज बोल उठे—"आपको इस प्रकार परिव्राजक बन इधर-उधर रहना शोभा नहीं देता। आपका रूप मधुकरी वृत्ति धारण करनेवालों का नहीं! भिक्षु! आप इस काशाय वस्त्र को त्याग कोमल रेशमी वस्त्र धारण करें। सम्पूर्ण मगध साम्राज्य आपके चरणों पर अर्पित है। मेरी प्रार्थना है कि आप उसका भोग करें।"

सिद्धार्थ ने आशीर्वाद देते हुए कहा—"आयुष्मान राजन! यह संसार, यह राज्य, सम्पूर्ण प्राणी मात्र बुरी तरह माया और आकर्षण के जाल में सूचिका छिद्रित माला की भाँति बिंधे हुए हैं। इनसे बचकर कोई नहीं निकल सकता। मैं स्वयं इनसे छूटने के लिये अपने कपिल-वस्तु जैसे सर्वसम्पन्न राज्य त्याग, माता पिता की आशाओं को ठुकरा कर, शान्ति के अमर संदेश की प्राप्ति के लिये गृहत्याग कर निकला हूँ। मेरी प्रव्रज्या हो गयी है। मैं अब किसी भी प्रकार इस संसार को अन्याह मायासागर से निकलना चाहता हूँ। तुम्हारे राज्य की लिप्सा मुझे नहीं। इसे तुम भोग करो। मैं तो परिव्राजक हूँ, भूवर!"

महाराज बिम्बसार सहमते हुए बोले—"देव! मैं आपसे अपरिचित था। मुझे अब ज्ञात हो गया कि आप किस कुल के रत्न हैं। आपके पूज्य पिता मेरे गुरु हैं। मेरी त्रुटियों को क्षमा करें। क्या इस अकिञ्चन को ज्ञान प्राप्ति के बाद आपका प्रथम दर्शन करने का सौभाग्य प्राप्त हो सकेगा? आर्य! तथा मैं आशा करूँ कि आप इस नगर को अपने पद यात्रा से पवित्र और पावन करेंगे?"

गौतम ने कहा—"राजन ! यदि मुझे बुद्धत्व प्राप्त हुआ तो अवश्य इस नगर में अपनी दीक्षा देने आऊँगा।"

सिद्धार्थ की वन्दना कर बिम्बसार अपने राज नगर को लौटे। बोधिसत्व आगे अपने गन्तव्य स्थल की ओर चले। निकट ही राम पुत्र महर्षि रुद्रक का आश्रम था। अपने युग के भारत विख्यात ज्ञानियों में उनकी गणना थी। उनके पवित्र आश्रम में ७०० शिष्य विद्याध्ययन करते थे। ब्रह्म-तत्त्व ज्ञान के आगार महर्षि रुद्रक थे। उन्होंने सिद्धार्थ को अपने आश्रम में आया देख प्रसन्न हो कहा—"आप यहाँ रुक कर इस स्थल को पवित्र करें।"

रुद्रक जैसे विद्वान की आज्ञा गौतम को माननी ही पड़ी। कुछ दिनों तक वे रुद्रक के आश्रम में रुके। दर्शन, ब्रह्मज्ञान आदि गूढ़ विषयों की शिक्षा आचार्य अपने छात्रों को देते। गौतम को सभी बातें ज्ञात थीं। उन्होंने आचार्य से 'अभिसंबोधि' प्राप्त करने के विचार से 'नैव संज्ञाना संज्ञायतन' सिद्धान्त ज्ञात किया। उन्होंने पुनः राम पुत्र आचार्य रुद्रक से निवेदन किया, "नाथ ! संसार में जो कुछ भी अब तक मस्तिष्क द्वारा जाना जा सकता था, उस शिक्षा को मैंने ग्रहण कर लिया। आपकी कृपा से एक नवीन योग से मैं परिचित हुआ। किसी अन्य नवीन योग-ज्ञान प्राप्ति के साधन से मुझे अवगत करायें।"

राम पुत्र रुद्रक ने विनम्र भाव से कहा, "आर्य ! मैं जो कुछ जानता था, उसे आपको बतला दिया। आपकी विलक्षण प्रतिभा से मैं प्रभावित हूँ। यदि आप चाहें तो अपने विस्तृत अनन्त ज्ञान की शिक्षा हम आश्रमवासियों को दें।"

"मैं सांसारिक करुणा के विमोचन के निमित्त प्रज्ञा प्राप्त करूँगा। मुझे अभी वास्तविक ज्ञान नहीं हुआ है। मुझे अभी और खोज करना होगा। मैं अवश्यमेव निर्वाण प्राप्त करूँगा।" सिद्धार्थ बोले— "देव! मुझे आज्ञा दें। मैं अभी तक वांछित वस्तु को न प्राप्त कर सका।"

उनकी इस बात को रुद्रक के आश्रम के पांच ब्रह्मचारी सुन रहे थे। इनमें भी वैराग्य प्राप्त करने की उत्कट अभिलाषा थी। गौतम प्रखर प्रतिभा से प्रभावित हो उनके पथ का अनुसरण करना उन्होंने भी निश्चित किया। कौन्डिन्य इन पांचों ब्रह्मचारियों में सर्वप्रमुख था।

आचार्य रुद्रक से आज्ञा ले, गौतम आगे चले। उनका अनुगमन इन ब्रह्मचारियों ने किया।" मैं स्मृति पटल पर एक-एक बात को क्रम-बद्ध रूप से याद कर कहानी में ढालता चला जा रहा था। दोनों बौद्ध भिक्षु रुचि ले रहे थे। मेरी बातें वे पूर्ण ध्यान मग्न हो सुन रहे थे। मैंने कहा—"सिद्धार्थ की यही साधु संगति की कहानी है।"

शिंग यू नाई बोल उठा, "सिद्धार्थ को आगे क्या करना पड़ा।"

मैंने कहा, "जब गौतम रुद्रक आश्रम से चले, वे सोच रहे थे, मैं घर बार छोड़, दर दर घूम रहा हूँ जिस ध्येय को मैं लेकर निकला उसकी पूर्ति भी न हो सकी। साधुओं की संगति की। कुछ कार्य सिद्धि न हुआ। कैसे लक्ष्य को मैं प्राप्त कर सकूँगा। वे उद्विग्न हो आगे चले।"

"मैं सांसारिक करुना के विमोचन के निमित्त प्रज्ञा प्राप्त करूँगा। मुझे अभी वास्तविक ज्ञान नहीं हुआ है। मुझे अभी और खोज करना होगा। मैं अवश्यमेव निर्वाण प्राप्त करूँगा।" सिद्धार्थ बोले—"देव! मुझे आज्ञा दें। मैं अभी तक वांछित वस्तु को न प्राप्त कर सका।"

उनकी इस बात को रुद्रक के आश्रम के पाँच ब्रह्मचारी सुन रहे थे। इनमें भी वैराग्य प्राप्त करने की उत्कट अभिलाषा थी। गौतम प्रखर प्रतिभा से प्रभावित हो उनके पथ का अनुसरण करना उन्होंने भी निश्चित किया। कौन्डिन्य इन पाँचों ब्रह्मचारियों में सर्वप्रमुख था।

आचार्य रुद्रक से आज्ञा ले, गौतम आगे चले। उनका अनुगमन इन ब्रह्मचारियों ने किया।" मैं स्मृति पटल पर एक-एक बात को क्रम-बद्ध रूप से याद कर कहानी में ढालता चला जा रहा था। दोनों बौद्ध भिक्षु रुचि ले रहे थे। मेरी बातें वे पूर्ण ध्यान मग्न हो सुन रहे थे।" मैंने कहा—"सिद्धार्थ की यही साधु संगति की कहानी है।"

शिंग यू नाई बोल उठा, "सिद्धार्थ को आगे क्या करना पड़ा।"

मैंने कहा, "जब गौतम रुद्रक आश्रम से चले, वे सोच रहे थे, मैं घर बार छोड़, दर दर घूम रहा हूँ जिस ध्येय को मैं लेकर निकला उसकी पूर्ति भी न हो सकी। साधुओं की संगति की। कुछ कार्य सिद्धि न हुआ। कैसे लक्ष्य को मैं प्राप्त कर सकूँगा। वे उद्विग्न हो आगे चले।"

कहा गया है—

शैले, शैले न माणिक्यं, मौक्तिकं न गजे गजे ।
साधवो नहिं सर्वत्र, चन्दनं न वने वने ॥

"अनेक साधुओं के मध्य भी उनकी साधना असफल रही ।" इतना कह मैं कुछ सोचने के लिये रुका । पुनः बोलने लगा ।

प्रारम्भ चोक्तं जनाः न परित्यजन्ती

मैंने आगे की कहानी इस प्रकार प्रारम्भ की, दत्तचित्त बौद्ध भिक्षु मेरी बातें सुन रहे थे।

"अब गौतम गयशीर्ष पर्वत पर पहुँच चुके थे। वहाँ कौन्डिन्य आदि अन्य पाँच भिक्षु पहले से ही विद्यमान थे। गयशीर्ष पर्वत आज गया के रूप में विख्यात है। गौतम ने इनसे पूछा, "आप लोग यहाँ किसलिये आये हैं?"

कौन्डिन्य ने विनम्र हो उत्तर दिया, "आप के साथ हम भी बोधि ज्ञान प्राप्त करेंगे। आचार्य रुद्रक के हम शिष्य हैं। आपकी बातें सुन, आपके साथ-साथ हम पाँचों मित्र आपका अनुकरण करते आये हैं। देव! आप हमारे पथ प्रदर्शक हैं। हमारे गुरु हैं!"

बोधि सत्त्व सिद्धार्थ ने उन्हें अपने पास सप्रेम रख लिया। वे भिक्षाटन कर अपनी क्षुधा तृप्ति करते। आस पास गौतम से लोग परिचित हो गये थे।

एकान्त प्राप्त कर गौतम सोचने लगते—"मैंने साधु संगति की। उनसे ज्ञान अर्जित किया। संसार की विषम परिस्थितियों और आतुर आकर्षण से ये साधु भी बचे नहीं हैं। उनका जीवन ठीक उस बगुले

सहस्य है जो हमें सा प्रतीत होता है। सब कुछ साधारण सामान्य व्यक्ति सा वे करते हैं, पर लोग उनकी पूजा करते हैं। आचार्यों से मुझे कोई भी लाभ न हुआ। जिस अप्राप्य ज्ञान के आलोक की खोज में मैं निकला वह मुझे कैसे प्राप्त होगा।

एक दिन टहलते हुए वे गयशीर्ष पर्वत के सन्निकट प्रवाहित होने वाली सरिता निरंजना के तीर पर पहुँचे। निकट ही सघन वृक्षों से घिरा हुआ एक ग्राम था। उस ग्राम की प्राकृतिक छवि दर्शनीय थी। सभी प्रकार विशुद्ध वातावरण, और निकट बहती निरंजना की पवित्रता का ध्यान कर इसी ग्राम के सघन कुंजों के निकट गौतम ने योग-साधन (तप) करने का निश्चय किया। उन्होंने पहले ही विचार किया था कि शरीर का मोह त्यागने पर ही अब प्रज्ञा ज्ञान होगा। यह रमणीय ग्राम उरुविल्व (उरुवेला) के नाम से विख्यात था।

सिद्धार्थ ने तपश्चर्या प्रारम्भ की। अनेक कठिन व्रत प्रारम्भ में उन्होंने धारण किया। दुष्कर तापसे शरीर सूख गया। वे वृक्षों में उलटे महीनों लटके रहते। जलती अग्नि पर समाधिस्थ हो बैठ जाते। शरीर का मोह न था। प्राणों की बाजी लगायी गयी थी। सरस पीली पुष्पित सरसों सा शरीर का रंग पीला पड़ गया। आस पास के गांवों की कन्या रमणियाँ यथा सुप्रिया, उरुविल्लिका, सुजाता आदि द्वारा दिये गये तंदुल कण, तिल और मिर्च आदि को कभी कभी क्षुधा-निवारण के लिये वे ग्रहण करते। कुछ दिनों तक केवल जल-पान के सहारे जीवन बीता। नयनों से नीर ढर-ढर कर अंगों पर जमने लगा। शरीर में जाले लगने लगे। रक्तपूर्ण शरीर अब केवल हड्डियों का सिमटा सिकुड़ा

ढाँचा मात्र रह गया। कंचन सा चमकता आनन अब काला पड़ चुका था। आँखें धँसकर भीतर चली गयी थीं। इतना होने पर भी जब उन्हें कुछ भी ज्ञान न हुआ, उन्होंने और घोर तपस्या प्रारम्भ की। वे श्वाँस-मार्ग अवरुद्ध कर वायु का सेवन तक न करते थे। अब गौतम रेचक, कुम्भक, पूरक तीन प्रकार की प्राण-क्रियाओं का परित्याग कर प्राण शून्य हो ध्यानावस्थित हो बैठ गये। कई दिन तक वे इसी तरह बैठे रहे। अन्ततोगत्वा तीन दिन के बाद एकाएक वे धरती पर गिर छटपटाने लगे। उनके सहयोगी शिष्य सर्वदा उनकी सेवा के निमित्त तत्पर रहते थे। पर उन्होंने सोचा कि इस महापुरुष की कठोर तपोपरान्त मृत्यु हो गयी। इसी प्रकार गौतम छह वर्षों तक निराहार, ताप, वर्षा, शीत में नग्न रह, शरीर को कठोर से कठोर कष्ट दे तप का अनुष्ठान करते रहे। पर अन्त में उन्होंने सोचा इस प्रकार शरीर को कष्ट देना वृथा है। इससे कुछ लाभ नहीं। प्रज्ञा प्राप्त करने का सत्य स्वरूप यह नहीं। ऐसा उनके अन्तर्हृदय में विचार उठा। इतने अशक्त वे हो गये थे कि शरीर हिल डुल तक न सकता था। किसी प्रकार संकेत से उन्होंने अपने आस-पास आये दर्शनार्थियों से कौपीन ले धारण किया। उनकी सुश्रुषा करने वाले उनके सहयोगी वहाँ उपस्थित न थे। अनेक कष्टों को झेलते हुए, लुढ़कते-गिरते निरंजना के पवित्र तट पर पहुँच उन्होंने स्नान किया। कोई ग्राम-रमणी उनको पथ्य दे जाती। उसे ग्रहण कर धीरे-धीरे वे स्वास्थ्य-लाभ करने लगे। अब वे स्वस्थ थे। अपने मनमें उन्होंने विचारा, 'मैंने शरीर को नाहक इतने आपत्तियों के बीच डाला। यह भी एक ढोंग है। पर मुझे अवश्य प्रज्ञा प्राप्त करना है।

मैं उन व्यक्तियों में नहीं जो कठिनाइयों के आगे इतने बड़े महान कार्य का सर्वनाश होते देखें।"

उनके पाँचों सहयोगी उनके शारीरिक कष्ट से द्रवीभूत हो तथा यह सब ढोंग मात्र समझ उनका साथ छोड़ दिया। अब वे शिष्य ऋषि पत्तन जो गयशीर्ष से १८ योजन दूर था चले आये थे। सन्यासी के वेश में वस्त्र-चिविर सहित वे वहाँ गये थे।

बोधिसत्व अडिग हो अपने गन्तव्य आकांक्षित प्रज्ञा प्राप्ति की चिंता में लीन थे। वे तप आदि को भी शारीरिक दिखावट समझे। प्रत्यक्ष वर्षों के अनुभव ने बता दिया कि शरीर को जलाने से कदापि कोई वांछित पदार्थ नहीं प्राप्त कर सकता 'ठीक ही यह उक्ति है'—

प्रारभ्यते न खलु विघ्न भयेन नीचैः
प्रारभ्य विघ्न विहता विरमन्ति मध्याः।
विघ्नैःपुनः पुनरपि प्रति हन्य मानाः,
प्रारभ्य चोत्तम जना न परित्यजन्ती॥

मैंने कहा "यदि दूसरा व्यक्ति होता तो अडिग हो जाता। पर वर बार छोड़ मधूकरी वृत्ति धारण कर अपने शरीर को कष्ट दे गौतम बुद्ध ने प्रज्ञा प्राप्ति के लिये मरण से भी कठोर दुखदायी तपों को किया। वे असफल हुये। पर उन्होंने हिम्मत न छोड़ी। वे उन पुरुषों में थे जो अनेक विघ्न बाधाओं के पड़ने पर भी प्रारम्भ किये कार्य को पूर्ण किये बिना चैन नहीं लेते। वे धन्य थे। महान थे।"

शिग यू नाई तथा चाइ तू शूंग बोधिसत्व के कठोर तपस्या का मेरे

द्वारा किये गये वर्णन को सुन उद्विग्नता का अनुभव कर रहे थे और चाङ् तू शुंग बोल ही उठा, "बड़ा कष्ट बुद्ध भगवान को हुआ होगा! सोना की परख कसौटी पर होता है। हमारा भगवान जरूर कसौटी पर खरा उतरेगा। आप आगे की बात भी कहता चलें। मैंने पुनः कहानी प्रारम्भ की। मैंने उनसे कहा—"बड़ी रुचिकर कहानी आगे मैं आपको सुना रहा हूँ। ध्यान से सुनें।" वे और भी जिज्ञासु बन मेरी बात सुनते रहे।

मैंने कहा—"जिस स्थान पर बुद्ध ने तपस्या की थी वह उरुबिल्व (उरुवेला) के नाम से उस समय विख्यात था। उरुबिल्व के अति सन्निकट एक ग्राम था। इस ग्राम के अति सम्पन्न पर जाति से महता परिवार में एक वय प्राप्त नव यौवना कन्या थी—निकट ही वट-वृक्ष स्थित थी। वह अपने यौवन के प्रारम्भिक दिनों में इस वट-वृक्ष की पूजा किया करती थी। सभी नवयुवतियाँ स्वप्न बनाती हैं कि उनका विवाह अच्छे घर में योग्य वर से हो। एक ऐसी गृह की नव युवती जो सर्वदा सुख के मध्य जीवन यापन करती रही, उसकी आकांक्षा स्वप्निल भले ही हो, पर स्वाभाविक अवश्य थी। उसने वट-वृक्ष देव से प्रार्थना की कि यदि योग्य गृह में उसका परिणय संस्कार हुआ, राम सा योग्य पति मिला, प्रथम गर्भ से ही शीघ्र फूल सा कोमल पुत्र उत्पन्न हुआ तो प्रत्येक वर्ष वैशाख पूर्णिमा के दिन वह वट वृक्ष देवकी सहस्र स्वर्ण खीर से बलि पूजन किया करेगी। उसने इसी दिन यह प्रतीज्ञा की थी। उसकी मनो कामना पूर्ण हुई। उसका पितृगृह से भी अधिक सम्पन्न गृह में परिणय संस्कार हुआ। वांछित पति मिला। साथ ही प्रथम गर्भ

से जिस सन्तान की उत्पत्ति हुई वह विहसता नन्हा पुत्र था। जिस कन्या की मनोकामना वट-वृक्ष देव की आराधना से परिपूर्ण हुई थी, उसका नाम सुजाता था।

आज वैशाख पूर्णिमा की वही पवित्र तिथि थी। सुजाता आराध्य देव के पूजन के लिये कल से ही तैयारी कर रही थी। उसने पास ही बह रही अनोमा नदी के शीतल तट पर स्थित वन में एक हजार कपिला गायों को मधुर घास भक्षण कराया। उनका दुग्ध दोहन किया उस दुग्ध को पाँच सौ गायों को पिलाया।

इन पांच सौ गायों के दुग्ध को ढाई सौ कपिला गायों को एक दूसरे को इसी प्रकार पिला; आठ गायों का धवल श्वेत दुग्ध सूर्य उगने के पूर्व ही आज उसने दूहा। पुनः आज वह दुहिता बनी थी। दुग्ध के मिठास और गाढ़े पन के लिये उसने ऐसा किया था। इस दूध को उसने नवीन रजत पात्र में रखा। स्वयं अपने हाथों वह अग्नि प्रज्वलित कर खीर पकाने लगी। पास ही उसकी वृद्ध दासी पूर्णा उसकी सहायता के लिये खड़ी थी। विनीत भाव से उसने दासी से प्रार्थना की "मैया पूर्णा जा तू वट-वृक्ष की सफ़ाई कर आ। मैं इधर भोज्य पदार्थ बना रही हूँ। देखना उच्चासन आदि सभी पूर्ण स्वच्छ कर देना। जल्दी जा।"

पूर्णा ने कहा—"मैं अभी जा रही हूँ पुत्री! सभी कुछ स्वच्छ कर शीघ्र आपकी सेवा में उपस्थित होऊँगी।" यह कह वह वट-वृक्ष के पास चली।

आज रात्रि से ही बोधिसत्व का चित्त उद्विग्न था। वास्तव में

उन्होंने आज रात्रि में पाँच सुस्वप्न देखे थे। महास्वप्नों का प्रभाव अवश्य ही पड़ता है। वे अपने मनमें विचारने लगे "मेरे उत्पन्न होने के पूर्व महारानी माया ने स्वप्न देखा था। उसका सुपरिणाम शीघ्र उनके सम्मुख आया। उसके गर्भ में मैं उत्पन्न हुआ, स्वप्न अवश्य सफल होंगे। ये कभी खाली नहीं जा सकते। प्रातः काल अत्यन्त सन्निकट था। नील गगन के प्राकृतिक माँग में प्राची का बाल रवि सिन्दूरी रेखा भरने ही वाला था पर सिद्धार्थ न जाने क्या उसी वट वृक्ष के नीचे बैठ सोच रहे थे। आज मधूकरी ग्रहण करने भी वे अभी तक न जा सके। वे समझ रहे थे—"आज मुझे बुद्धत्व की प्राप्ति होगी। मेरा स्वप्न अवश्यमेव साकार होगा। पाँच-पाँच शुभ स्वप्न एक संग! क्या यह केवल मृग-तृष्णा है। नहीं""नहीं" आज मुझे प्रव्रज्या प्राप्ति होगी। यद्यपि वे नित्य-क्रिया से निवृत्त हो चुके थे। पर निश्चिन्त थे। प्रति दिन गौतम गाँवों में भिक्षाटन कर अब तक आ जाते थे।

पूर्णा आयी; अभी वह वट-वृक्ष के निकट भी न आ पायी थी कि दूर से ही उसने देखा—"आज वट-वृक्ष कांचन अरुण आभा से दीपित हो रहा है उससे ज्योति बिखर, निकट के वातावरण में विस्तारित हो रही है। क्या कारण है?" पास आकर उसने देखा उसे अपने नेत्रों पर विश्वास न था। अभी प्रभाकर की किरणें भी तो न फूटी थीं। बोधिसत्व को वह न पहचान पायी। उसने समझा वट-वृक्ष देव पुत्री सुजाता से प्रसन्न हो स्वयं उसके हाथ का निर्मित प्रसाद ग्रहण करने अपने देव रूप में उपस्थित हुये हैं। मेरा जीवन सफल हो गया। मैंने आज

देवके दर्शन पाये। इन्ही बातों को सोचती वह दौड़कर सुजाता के पास पहुँची। सुजाता भक्ति भावना से भोज्य सामग्री तथा खीर परस कर देवकी पूजाके लिये लेकरबैठी सोच रही थी। इसी बीच पूर्णा सहर्ष बोली—"पुत्री सुजाता। आज वट-वृक्ष देव स्वयं तुम्हारे हाथ का खीर ग्रहण करने के लिये वट-वृक्ष के नीचे आ आसन मार बैठे हैं। शीघ्रता करो।"

सुजाता को उसके बात का विश्वास न हो रहा था, उसने कहा—"सच पूर्णा माता! यदि ऐसा है तो मैं तुन्हें यथेष्ट पुरस्कार आज दूँगा।"

सुजाता ने शीघ्र स्वर्ण थाल में स्वादिष्ट खीर रखा। उसे दूसरे कंचन-थाल से ढक हंस-पंख जैसे श्वेत रेशमी वस्त्र में बाँधकर श्रद्धा सहित वटवृक्ष के नीचे चली। उस समय वह वस्त्राभूषणों से पूर्ण सुशोभित हो रही थी। उसके शिर पर खीर की पवित्र थाली थी। हाथ में स्वर्ण-घट में अनोमा का विशुद्ध जल था।

वह वट-वृक्ष के समीप आयी। जो कुछ उसकी वृद्धा दासी ने कहा था वह बिलकुल ठीक निकला। उसने स्वयं अपने शिर से थाल उतार उसे खोला। ढंके वस्त्र को हटाया। सुवासित पुष्पों से बोधिसत्व की पूजा कर स्वर्ण कलश से उनका हाथ धुलाया। सिद्धार्थ ने अपने पात्र को उपस्थित न देख उसी कलश से हाथ धोया। सुजाता ने खीर भरे पात्र को महा-वटवृक्ष-देव के सम्मुख उपस्थित किया। बरबस बोधिसत्व के नेत्र सुजाता की ओर उठ गये। आज सुजाता की मनोकामना पूरित हुई। वह अपने चिर अभिलाषित देव का दर्शन कर अपना जीवन सफल समझ रही थी। उसने सोचा—"देव मेरी ओर संकेत कर कुछ वर माँगने

के लिए कह रहे हैं उसने आर्द्र कंठ से कहा—"आपकी कृपा से मेरी मनोकामनाएँ पूरित हुईं। आपका भी यदि कोई मनोरथ हो तो आज पूरा हो।" ऐसा कह वह बोधिसत्व के चरणों में गिर पड़ी और भरी थाल खीर उन्हें अर्पित कर वह अपने निवास को प्रसन्न मुख लौटी। आज उसने देवदर्शन किये थे। वह फूली न समा रही थी।

उसके चले जाने पर गौतम अपने स्थान से उठे। पवित्र वट वृक्ष की परिक्रमा की। 'आज मेरी भी मनोकामना पूरित हो' वे वट-वृक्ष देव से प्रार्थना कर चल दिये। कल-कल निनादिन तीव्र धारावाली निरंजना के तीर आकर वे बैठ गये। स्नान आदि से निवृत्त हो प्रसन्न चित्त इस सुस्वादु खीर को ग्रहण किया। आस पास खीर के चावल-कण बिखर गये थे। स्वर्ण थाल नदी में सिद्धार्थ ने फेंक दिया। तीव्र-धार में वह अतल के गर्त में समा गया" यह मैंने आगे कहा। वे दोनों व्यक्ति ध्यान से इस कहानी को सुन प्रसन्न हो रहे थे।

शिंग यू नाई ने कहा—"उस लड़की का भाग्य बड़ा अच्छा होना था। उसने भगवान को अपने हाथ का भोजन खिलाया!"

मैंने कहा—"जी हाँ! इतिहास के पृष्ठ जब तक रहेंगे, मानवता का एक भी चिन्ह जब तक शेष रहेगा, संसार के सम्मुख एक आदर्श के रूप में सुजाता और बोधिसत्व की यह कहानी याद की जायगी। धन्य है सुजाता। उसकी वाणी धन्य है! जिसने बोधिसत्व को यह आशीश दिया। यदि आपकी भी कोई मनोकामना हो वह मेरी तरह पूर्ण हो। 'सुजाता के हाथ की भोज्य सामग्री भी उन्होंने ग्रहण की।

यह उनके जैसे गौरववान पुरुष के लिए युग को देखते हुये अत्यन्त ग्लानि की बात है।"

ताइ चू शुंग भी मेरी बातों में मौन हो रुचि ले रहा था। वे कहने ही जाते थे कि आप आगे कहें, मैंने स्वयं आगे की कहानी प्रारम्भ कर दी थी।

अप्राप्य प्रज्ञां बहुजन्म दुर्लभम्

शिंग यू, नाई तथा चाई न, शुंग मेरी आगे की बात सुनने के लिये उतावले हो रहे थे। मैंने आगे कहना प्रारम्भ किया—"सुजाता द्वारा प्रदत्त खीर का भक्षण कर सिद्धार्थ सचिन्तित हो सोचने लगे कि जैसे भी होगा मैं अवश्य प्रज्ञा ज्ञान प्राप्त करूँगा। इस बार मैं अन्तिम साधना करूँगा। यदि सफलता मिली तो मैं प्रबुद्ध हूँगा। अन्यथा जीवन त्याग दूँगा।" इसी विचार में चिन्तित हो वे धीरे-धीरे टहलते हुए बोधि वृक्ष के (पीपल के वृक्ष) निकट आये।

श्रोत्रिय नामक घसियारा जिसे लोग ब्राह्मण बताते हैं, उधर से ही घास का बोझ लिये निकला। बोधिसत्त्व को प्रायः वह तृण-दान किया करता था। उसने आज भी आठ मुट्ठी तृण गौतम को दान में दे, प्रणाम कर चला गया। बोधिसत्त्व ने उस तृण को वृक्ष के मूल में फैलाया। पुराना तृण जो शुष्क हो गया था, उसे हटा दिया। पुनः वे दृढ़ प्रतिज्ञ ध्यानावस्थित हो गन्तव्य सुख की लिप्सा की प्राप्ति के लिए आसन पर बैठ गये। उनका आसन किसी चित्र कलाकार द्वारा निर्मित मखमली गुदगुदे कोमल गद्दे के समान सुखदायी और दर्शन योग्य था। पूर्वाभिमुख बोधिसत्त्व बैठे थे। उन्होंने अडिग समाधि धारण कर रखी थी।

कोई व्यक्ति जब अपनी कठिनाइयों पर विजय पाकर, एक ऐसे मार्ग

पर पहुँचता है जहाँ से आगे कोई मार्ग ही नहीं होता, उस समय के पूर्व वह अनेक विपत्तियों का सामना करता है। उसे मार्ग में विपत्तियाँ मिलती हैं, उसे गिराना चाहती हैं। मार्ग परिवर्तित करने को बाध्य करती हैं। पर जो उत्तुङ्ग शिखर पर पहुँचना चाहता है, वह कदापि भी अपने मार्ग को परिवर्तित नहीं करता। भले ही काल का सामना करना पड़े। हँसते-हँसते वह प्राण-त्याग कर सकता है, पर अपने पूर्व निश्चित निश्चय से अडिग नहीं हो सकता।

इसी प्रकार योगी गौतम पर भी आक्रमण किया गया। अनेक प्रकार की दुःख चिन्तायें उनके मन को बेधने लगीं। उन्हें अपने ध्येय से हटाना ही उनका लक्ष था। मार ने अपने मन में विचार किया—"गौतम महान बन जायगा। उसे प्रज्ञा प्राप्त होगी। वह अपनी विकराल सेना के निकट गया। स्वयं उनका नायक बन सिद्धार्थ के सन्निकट बोधि वृक्ष के पास आया। मार ने प्रारम्भ में 'रति-प्रीति' को गौतम को अपने मार्ग से हटाने के लिये भेजा। रति ने गौतम को प्रलोभन दिया। प्रीति ने गृह लौट चलने को बाध्य किया। माया ने मन को उद्वेलित किया। मोह ने इस जीवन से घृणा उत्पन्न करानी चाही। पर अब सिद्धार्थ अटल थे। वे किसी की भी नहीं सुन रहे थे। मार का यह आक्रमण खाली गया। कुछ उपाय न देख उसने अपनी भयंकर सेना को आदेश दिया—"जैसे भी हो महाराज शुद्धोधन का पुत्र जो अब बोधि प्राप्त करने ही वाला है, विभिन्न भयंकर डरावने वेष धारण कर तुम लोग भयभीत कर उसकी इस समाधि को तोड़ो। सामने से आक्रमण करना भय से खाली नहीं। अगल-बगल, दायें-बायें, से ही उस

पर आक्रमण करना चाहिये, वह इस समय अलौकिक तेज धारण कर रहा है।"

मार देव की आज्ञा प्राप्त कर सेना के सभी सैनिक रौद्र रूप धारण कर, विभत्स अट्टहास कर भय दिखाने लगे। विघ्न उपस्थित करके वे बुद्ध की समाधि भंग करना चाहते थे। वे राक्षसी रौद्र रूप धारण करके उन पर आक्रमण करने लगे। आंधियां आयीं। भयंकर तूफान चले। घनघोर वृष्टि हुई। ओले गिरे। पत्थर फेंके गये। कीचड़ की होली खेली गयी तथागत पर। आंखों में बालू के किरकिराते कण डाले गये। वृक्ष उखड़ एक ओर लुढ़क गये। नदियों में बाढ़ आ गयी। चपला की चमकने न जाने कितनों में तड़पन उत्पन्न कर दी। विकराल पहाड़ फट-फट कर धराशायी हो गये। पर धन्य है वह बोधि-वृक्ष! उसका एक पत्ता तक न खड़का। पानी की एक बूंद भी छन कर सिद्धार्थ पर न गिरी। कीचड़ विलुप्त हो गये। चपला की चमक शीतल चांदनी में परिवर्तित हो रही थी! घोर भयंकर रौद्र-अट्टहास कर्ण-प्रिय लग रहा था। तथागत पर तलवार की चमकती धार, नोकदार भाले भयंकर बाण के नोकों से आक्रमण किया गया। पर सबको उन्होंने उसी प्रकार सहा मानों उन पर पुष्पित सुगन्धित फूलों की वृष्टि हो रही हो। सिद्धार्थ ने वह अस्त्र धारण किया था, जो बड़े भाग्य से प्राप्त होता है। दश परिमिता शस्त्र को उन्होंने अपनी रक्षा के लिये ढाल बनाया। कुछ भी उन्हें नहीं अनुभव हो रहा था। चिरसंगिनी दशम् परिमितायें कटिबद्ध हो उनकी रक्षा कर रही थीं। वर्षों से तो गौतम की ये ही संगिनी थीं।

अब मार ने रूप लावण्यपूर्ण, खिली उरोजवाली नवयुवती स्वर्गीय अप्सराओं को उन्हें अडिग न करने के लिये भेजा। वे सिद्धार्थ के निकट पहुँच अपनी चपलतासे उन्हें आकर्षित करना चाहती थीं। नग्न काम कला के प्रदर्शन द्वारा उन्होंने सिद्धार्थ के मनमें तूफान उत्पन्न करना चाहा। गौतम के समाधि के निकट पहुँच वे उन्हें अपने हाथों उठाकर गृह वापस भेजना चाहती थी। पर एक ऐसी ज्योति तथागत के शरीर से प्रस्फुटित हो रही थी कि वे उनके पास पहुँचने के पूर्व ही उसमें झुलस कर सदा के लिये समाप्त हो जाती। सिद्धार्थ ने उन्हें देखने को कौन कहे, कुछ जाना ही नहीं। वे अडिग हो सब कुछ भूल, अपनी लक्ष्य प्राप्तिके लिये ही एकमात्र आकर्षण समझ उसीमें लीन थे।

पुनः सिद्धार्थ से विषय वासना से पूरित सत्यकाकटु शत्रुसे मार ने प्रार्थना की—आप वापस जायं, मैं यहाँ बैठ बोधि प्राप्त करूँगा। पर पुन सिद्धार्थ ने कोई उत्तर देना उचित न समझा और शांतचित्त अपनी साधना में लीन रहे। अन्त में मार लज्जित हो लौट आया।

मार चला गया। उसकी सेना हारकर तथागत की ज्योति से चकाचौंध हो तितर-बितर हो चुकी थी। एकांत वातावरण में ध्यान रत हो, निमग्न चित्त शांति धारण कर, वे बैठे। संयोग से महामानव के जीवन की सबसे बड़ी साधना आज सफल हुई। जिस ज्ञान के आलोक को प्राप्त करने के लिए, तथागत को ग्रह त्याग कर भयंकर कटु दुःखों को सहन करना पड़ा, वही स्वप्न आज साकार हुआ। चित्त की वृत्ति को एकाग्र कर प्राप्त संप्रज्ञात समाधि, वितर्क विचार, आनन्द और स्मिता आदि समाधियों में क्रमशः प्राप्त होते हुये वे श्रेष्ठ समाधी द्वारा संप्रज्ञात को प्राप्त करने

में सफल हुए। पुनः उन्होंने सर्वोच्च समाधि धारण की। अब वे दुःख सुखके क्षुद्र वातावरण से बहुत ऊपर उठ चुके थे। उन्हें अलौकिक आनन्द का अनुभव हुआ।

तथागत को प्रथम यात्रामें स्पष्ट दिव्य दृष्टि प्राप्त हुई। द्वितीय यात्रा में पूर्वानुस्मृति ज्ञान तथा तृतीय में उन्हें अपना द्वादश प्रतीत्य समुत्पाद का दर्शन हुआ। सिद्धार्थ को बुद्ध पद का लाभ हो चुका था। वे आज संसार के सामान्य मनुष्यों के विचारों से बहुत ऊपर उठ चुके थे। उन्होंने कहा—"मैं अनेक जन्मों से गृहकार की खोज में जन्म लेता रहा। हमारा निर्माता हमें मिलता ही न था। पर आज मैंने उसे देखा है। वह पुनः मुझे अब माया जालमें न बाँध सकेगा। उसकी कड़िया छिन्न-भिन्न हो चुकी हैं। उसके निर्माण की शक्ति शिथिल पड़ गयी है। मैंने निर्वाण प्राप्त कर लिया। तृष्णा मुझे अपने में न सना पायी। मैं स्वतन्त्र हूं।"

आज बुद्ध को ज्ञान लाभ हुआ। उनकी युगोंसे संजोयी सबसे बड़ी साधना साकार हुई। वे अमर हो गये। आजकी यह निशीथ तीनों लोकमें सर्वदा के लिये पूजित हो गयी। चन्द्रा की चांदनी का अमृत-ज्ञान ने बुद्ध को निर्वाण दिलाया। उसकी शीतलता सर्वदा कायम रहेगी। जब तक यह वृक्ष रहेगा, इसके एक-एक पत्ते रहेंगे वे अपनी कहानी सुनाते रहेंगे। वह कहानी जिसकी सत्यता की खोजमें एक सामान्य कुमार युगका सबसे बड़ा धर्म ज्ञाता मुनिके रूपमें प्रतिष्ठित हुआ। धन्य है वह वसुन्धरा जहाँ बुद्ध को ज्ञान—किरण का साक्षातकार हुआ हृदय चक्षु खुले। संसार की क्षुद्र आकांक्षाओं से ऊपर उठने की प्रेरणा मिली।" मैंने कहा। दोनों बौद्ध भिक्षु प्रसन्न हो मेरी बातें सुन रहे थे। उनका

आनन खिला हुआ था। वे भगवानके प्रज्ञा प्राप्ति की प्रसन्नता का अनुभव स्वयं न कर रहे थे। ऐसा प्रतीत हो रहा था, जैसे उन्हें कोई ज्ञान मिला है। आलोक मिला है, मेरी बातों से।

मुझे वे रुका हुआ नहीं देखना चाहते थे। चाई तू शुक्र बोल उठा "हमारा भगवान अब ज्ञान प्राप्त कर क्या किया।'

मैंने कहा तो सुनें भगवान बुद्धके आगे की कहानी। मैंने पुनः जो कुछ मुझे स्मरण था, वह सुनाने लगा।

मैं बोल रहा था—'बोधिज्ञान उपरान्त तथागत सात सप्ताह तक उसी पवित्र वृक्षके आस पास अपने प्राप्य ज्ञान के सम्बन्ध में विचार करते और फिरते रहे। उनका प्रथम सप्ताह इस वृक्षके ही नीचे बीता। वे अविद्या, संस्कार, विज्ञान, नामरूप, षडायतन, स्पर्श, वेदना तृष्णा, उपादान, भव, जाति, जरादि दुःख स्कंध आदि द्वादश निदान द्वारा जाने गये तत्वों का विश्लेषण करते रहे। उनका दूसरा सप्ताह बोधि वृक्षसे १४ धनु पूर्वोत्तर दिशा में बीता, यहाँ प्रबुद्ध बुद्ध अनिमेष शांत स्थिर रहे। तीसरे सप्ताह में इस स्थान से पाँच धनु हट कर वे सहर्ष विचरण करते रहे। यहाँ वे चौथे सप्ताह ज्ञानी सिद्धार्थ अन्तराल, अवश्य जो यहां से ३२ धनुक दूरीपर था गये। यहां पर मार की पुत्रियों ने पुनः उन्हें अपने पाश में बाँधने के लिये अनेक आयोजन किये। पर वे असफल रहीं। प्रबुद्ध सिद्धार्थ निश्चिन्त थे, तिल भर भी न हटे। उनकी एक भी न चली। यहीं गौतम ने ब्राह्मण की ख्याति प्राप्त की। आगे अपना अन्य सप्ताह उन्होंने शीतल सरवर तीर पर जहाँ मुचकुंद का वृक्ष था बिताया। इस स्थान को मुचकुंद द्रह कहते हैं। यहाँ नागराज ने उनकी सुश्रुषा की। सातवें अन्तिम

सप्ताह में वे बोधि वृक्ष से ४० धनु दक्षिण दिशामें स्थित राजायतन नामक स्थान पर आये। ३।४६ दिनों की गहन साधना में सिद्धार्थ ने अन्न जल तक ग्रहण न किया। उनके हृदय में प्रसन्नता की विद्युत कौंध गयी थी। यहां पर उन्होंने स्नान ध्यान किया। वे सोच रहे थे कि अब मैं पापोंका नाश करूँगा। मेरी साधना सफल हुई। मैं सम्यक बुद्ध तथागत हूँ। इसी बीच दो व्यक्ति राजायतन वृक्ष के पास आये सिद्धार्थ प्रसन्न चित्त आसन लगा विराज मान थे। उन्होंने सादर तथागत को चावल की रोटी और मधु सिला पात्र में भेंट किया। प्रबुद्ध बुद्ध ने उसे ग्रहण किया। उन्हें आशीष दिया। भगवान के ज्ञान प्राप्ति को उपरांत प्रथम वाणी का प्रसाद इन्हीं दोनों व्यक्तियों को मिला। ये सहाय गाड़ीवान थे। इनका नाम तपसू और मल्लिका था। इनका भाग्योदय हुआ था। महान ज्ञानी प्रबुद्ध बुद्ध ने इनके द्वारा अर्पित भोजन इस अवसरपर किया। उन्हें अपना कर दे भगवान गौतम पुनः अजपाल वट वृक्ष के नीचे आसन लगा बैठ गये। वे सोच रहे थे, ' अब मेरा युगों का अभिलाषित महान कार्य सम्पन्न हो चुका है। संसार इस नर्क कुंड में पड़ा है। मैं भी यदि अपने सत्पथ से डिग जाता तो आज इसी प्रकार शहरके कीड़ों की भांति बिलबिलाता रहता। संसार का यह क्रम रहा है कि जब, नवीन मानसिक ज्ञान किसी महान व्यक्ति को प्राप्त होता रहा है। लोग उसकी हँसी उड़ाते रहे हैं। उसका उपहास करना अपना लोग कर्तव्य समझते हैं। मुझे प्रवज्या प्राप्त हुई है, क्या मैं इसे अपने तक ही सीमित रखूं। लेकिन इस संसार का क्या होगा? क्रोध, मोह, माया आदिके जंजालोंमें जकड़ी मानवता आज कराह रही है, उसके इस आकर्षक चुभते जंजालको काटना होगा।

उसे इससे छुड़ाना आवश्यक है। तो यह सम्भव कैसे हो सकता है? मेरे अनन्त ज्ञानका प्रचार आवश्यक है। पर किसके द्वारा? कौन इसे अनन्त विस्तृत असार संसार में अमृत पावनकी बूंदें सदृश्य वितरित करेगा।"

इन्हीं विचारों में वे खोये थे। उनके मस्तिष्क में आया, "मेरे धार्मिक शिक्षक और मित्र मेरी सहायता कर सकते हैं। आलाक-कालाम श्रेष्ठ विद्वान विज्ञ और शीलवान चरित्रशील ऋषि हैं। उन्हें ही अपने ज्ञान का आलोक दूँ। उसका वे विस्तरण करेंगे। 'अरे मैं भूल गया। एक सप्ताह पूर्व ही उनका शरीर त्याग हो चुका है। राम पुत्र रुद्रक भी वृद्ध महाज्ञानी हैं। उनको ही अपने सिद्धान्तों को समझाऊँ। पर कल वे भी तो चल बसे.....तो.....अब क्या करूँ। इस साधना के परिणाम को अपने ही तक सीमित रख कदापि भी मैं सुखी नहीं रह सकता। लेकिन करूँ भी तो क्या करूँ.....? ठीक.....ठीक.....स्मरण आया। मेरे पंचवर्गीय मित्र मेरे आवश्यक कार्यों को अवश्य कर सकेंगे। कौण्डिन्य, वप, भद्रिय, भिक्षु, महानाम और अश्वजीत सभी तो कर्मठ कार्यकर्त्ता हैं। उनके हृदय में मेरे प्रति श्रद्धा है। उन्होंने दिन रात परिश्रम कर मेरा जीवन रक्षण कठोर तप के समय किया है। वे हैं कहाँ। कहीं चले गये। उन्हें कैसे प्राप्त करूँ। "अच्छा.....।" अन्तर्चक्षु द्वारा गौतम ने पंचवर्गीय भिक्षुओं को देखा। वे वाराणसी के निकट ऋषिपत्तन में मृगदाव के निकट सहर्ष विचरण कर रहे थे। उन्हीं के पास चलने पर कल्याण होगा। अपने अपार ज्ञान का दर्शन उन्हें कराने के निमित्त वे वाराणसी चले। यहीं पर धर्म चक्र प्रवर्तन का भी निश्चय प्रबुद्ध बुद्ध ने किया। वे अब गयशीर्ष पर्वत को त्याग कर वाराणसी के मार्ग पर अग्रसर

हुए। आशा और विश्वास उनके मार्ग के सम्बल थे। उसी के सहारे वे बढ़ते चले जा रहे थे। निकट ही मार्ग में उन्हें वैष्णव धर्म के पूर्व रूप (आवक) का अनुयायी (आजीवक) उपक मिला। भगवान गौतम के ब्रह्म निष्ठ तेज से वह प्रभावित हुआ। गौतम का परिचय जान उनके चरणों पर गिर पड़ा। गौतम ने उसे त्राण दिया। वह कृतकृत्य हो अपना जीवन धन्य समझने लगा।

मार्ग में गौतम को तीन दिन लग गये। प्रथम दिन गया में तथागत को रुकना पड़ा। क्रमशः रोहित वस्तु, अनाल, सारथीपुत्र नामक स्थानों पर रुकते हुए गौतम बुद्ध चौथे दिन वाराणसी के निकट बहनेवाली सुरसरि के तीर पर पहुँचे। वे विरागी थे। उनके पास वस्त्र और भिक्षा पात्र मात्र शेष था। केवट ने नौका से उन्हें पार न किया। राम इसलिए केवट द्वारा गंगा पार नहीं किये जा रहे थे कि नौका की सुन्दरी में परिवर्तित होने का भय था। सम्बुद्ध बुद्ध के पावन पवित्र चरण से केवट की नौका पवित्र हो जाती। वह शिला न बनती अपितु स्वर्ण उगलती पर महामूर्ख अज्ञानी नाविक की अनभिज्ञता के कारण तथागत को कटिभर जल थहाते हुए वाराणसी के पवित्र स्थल में प्रविष्ट होना पड़ा।" मैंने कहा—"यह मेरी नगरी धन्य है जो तथागत के आगमन से पावन हो सकी।"

बौद्ध भिक्षु मेरी बात सुन प्रसन्न हो रहे थे। शिग यू नाई ने हास-परिहास करने के ध्येय से कहा—'आपकी नगरी में तो तथागत का बड़ा स्वागत हुआ होगा।'

मैंने कहा—'जी, हम काशीवासी सर्वदा से अपने अतिथियों के प्रेम-मय आतिथ्य के भूखे होते हैं। उस युग में गौतम का भी सत्कार किया

गया। पर उन्होंने किसी का आतिथ्य न ग्रहण किया। अपने भिक्षा पात्र में आये सामान्य भोजन से ही वे सन्तुष्ट हो जाते थे। यहाँ भिक्षाटन कर भोजन उन्होंने किया। मैंने उचित उत्तर देते हुए कहा—'आप लोगों से कल मैंने अपने यहाँ भोजन का आग्रह किया, पर आपने टाल दिया। क्या आज भी आपका आतिथ्य-सत्कार करने का अवसर हमें न प्राप्त होगा। भोजन आज आप यहीं करेंगे। आप लोग बुद्ध जैसे निष्ठुर योगी न बनें।'

वे खिलखिलाकर हँस पड़े। उन्होंने कहा—'आपने खूब अच्छा कहा। आज हम अवश्य आपका भोजन करेगा।'

मैं ऊपर गया। आते समय एक पुस्तक मेरी हाथ में थी। जम्बू लस्सी लेकर उपस्थित हुआ। मेरे आग्रह पर उन्होंने लस्सी पीना स्वीकार किया। मैं भी उनका साथ दे रहा था।

पुनः आगे की बात प्रारम्भ करने का संकेत पा मैं उन्हें गौतम के धर्मचक्र-प्रवर्तन की कहानी सुनाने लगा।

धर्म-चक्र प्रवर्तनम्

मैंने कहा—"वाराणसी में चलकर तथा गंगा वरुणा नदी को पार कर ऋषिपत्तन के निकट आये। आजकल जहां चौखण्डी स्तूप है वहां पर उनकी भेंट कौण्डिन्य आदि पंचवर्गीय भिक्षुओं से हुई। उन भिक्षुओं ने गौतम को अपने आश्रम की ओर अग्रसर देख अत्यन्त आश्चर्य प्रकट किया। उन्होंने गौतम को गया में भीरु और अज्ञानी समझ त्याग दिया था। वे परस्पर तथागत पर व्यंग्य करने लगे। पर कौण्डिन्य ने कहा—सम्भव है गौतम को ज्ञान लाभ हुआ हो! उसको हमें सुआसन देना चाहिए।" अन्य पंचवर्गीय भिक्षु गौतम की बातों से रुष्ट हुये। पर उन्हें अन्ततः अपने सखा और मार्ग दर्शक की बातें मान्य हुई।

गौतम अब सन्निकट आ गये। उन्होंने अपने प्राप्त ज्ञान को सुनाने की उत्कट अभिलाषा व्यक्त की। भिक्षु उनकी इस बात को सुन हँसे और उनका उपहास करने लगे। गौतम ने सोचा मेरी प्राप्त साधना मुझ तक ही सीमित रहेगी। क्या मैं इसका ज्ञान लाभ इस संसार को न करा सकूंगा। तथागत ने पञ्चवर्गीय भिक्षुओं से निवेदन किया—"आप मेरी बातें सुनें। यदि आपको रुचिकर लगे, मेरी बातों में कोई तत्व हो, सार

हो, मेरा कोई उद्देश्य हो तो आप ग्रहण करें, अन्यथा मुझे त्याग दें। मेरी हत्या आप कर दें। जीवन आपके हाथों में सौंप दूँगा।"

गौतम की ओजमयी वाणी तथा उनका दृढ़ संकल्प सुन भिक्षु अब उनसे प्रभावित हुये। कौण्डिन्य ने संकेत से कहा, "देव ! आप अपनी वाणी का प्रसाद हमें दें। हमारी अनभिज्ञता को क्षमा करें।" अन्य चारो भिक्षु भी नतमस्तक हो अपने किये गये कुकृत्य पर पश्चाताप कर रहे थे। उनके आग्रह पर गौतम ने अपना प्रथम उपदेश देना निश्चित किया।

यह वरुणा के शांत शीतल कछार की, शुष्क तपस्वी के प्यार भरे विराग की कहानी है। ऋषिपत्तन में तथागत के प्राप्त उस साधना का प्रथम सदुपदेश हुआ जिसे वे संजोये चिंतित हो घूम रहे थे। यही वह पवित्र स्थल है, जहां गौतम की अमृत वाणी का घड़ा फूटा। चारो ओर अमृत की बूँदे क्षेत्र रूपी मानवों पर शबनमी मोती के रूप में बरसी। सायंकालीन बेला में गौतम ने अपना प्रथम उपदेश दिया। वे उपदेशको ग्रहण कर रहे थे। पंचवर्गीय भाग्यवान भिक्षु थे। गौतम अपने हृदय के प्राप्त ज्ञान का आलोक बिखेर रहे थे। उस आलोक का प्रथम साक्षात्कार इन्हीं भिक्षुओं को हुआ। गौतम ने कहा—

"भिक्षुओं ! योगी या परिव्राजक को संसार को विनष्ट करने वाले दो वस्तुओं का कदापि भी सेवन न करना चाहिये। काम वासनाओं से विरत होना ही सबसे बड़ी साधना है। हीन, ग्राम्य, आध्यात्मिक मार्ग से पृथक करने वाले अनार्य और अनर्थ संहित है। दूसरा अन्त है काय-क्लेश (तप) अपने शरीर को कदापि भी ढोंग और दिखावटी कष्टदायी क्लेशमें न डालना चाहिये। इन दोनों मार्गों को त्याग कर जिसमें प्रथम अत्यन्त

क्षुद्र और द्वितीय अत्यन्त कष्टकर है। भिक्षु को मध्यम मार्ग का अनुसरण करना चाहिये। यह मध्यम मार्ग उनके चक्षुओं को खोलने वाला है, ज्ञान देनेवाला है, अभिज्ञा के लिये परम ज्ञान का परिचय दिलानेवाला है। निर्वाण गति को प्राप्त करनेवाला मध्यम मार्ग ही सर्वश्रेष्ठ है।"

"मध्यम मार्ग—भिक्षुओं! मैंने इस उपयोगी मध्यम ज्ञान को कैसे प्राप्त किया, यह है क्या, कहाँ से आया, क्या इसका उद्देश्य है इसे मैं आप को समझा दूँ। मैंने अष्टाङ्गिक मार्ग को प्राप्त किया है। यह अष्टाङ्गिक मार्ग सम्यक् दृष्टि दाता, सम्यक् संकल्प, सम्यक् वचन, सम्यक् कर्मान्त, सम्यक् आजीविका, सम्यक् प्रयत्न, सम्यक् स्मृति तथा सम्यक् समाधि आदि का मिश्रित रूप है। इन्हीं मार्गों पर चलकर मध्यम प्रतिपदा का साक्षात्कार मुझे हुआ है। इसी मार्ग से भिक्षुगण उपशम, अभिज्ञा, सबोध निर्वाण प्राप्त कर सकते हैं। ज्ञान तथा चक्षुओं को खोलनेवाला यह मार्ग सर्वथा अभिनन्दनीय है।"

"भिक्षुओं! दुःख प्रथम आर्य-सत्य है। जन्म लेते समय दुःख का अनुभव होता है। जरा अत्यन्त कष्टकारी है। मृत्यु सर्वविदित वेदना है। अपने अप्रिय लोगों से मिलने से दुःख उत्पन्न होता है। अपने स्वजनों का विछोह दुःखदायी है। आकांक्षित वस्तु न मिलनेपर दुःख उत्पन्न होता है। संक्षेप में पंचोपादान स्कंध ही दुःख है।

भिक्षुओं! दुःख समुदय नामक दूसरा आर्य सत्य तृष्णा है। काम तृष्णा, भव तृष्णा, विभव तृष्णा ये इसके तीन रूप हैं। जिनके जाल से बचना ही सर्वश्रेष्ठ कार्य है। प्रीति और रागादि से युक्त, स्थान में यह अभिनन्दनीय है।

भिक्षुओं ! तीसरा आर्य सत्य दुःखनिरोध है। यह तृष्णा का विराग है। त्याग है। तृष्णा से मुक्ति का मार्ग है।

'भिक्षुओं !' गौतम सम्बोधित कर कह रहे थे। भिक्षुगण उनकी बातें तन्मय हो सुन रहे थे। उनके हृदय का विकार जो तथागत के प्रति था विनिष्ट हो चुका था। प्रबुद्ध सिद्धार्थ के प्रति उनके हृदय में श्रद्धा उत्पन्न हो रही थी।

"चौथा आर्य सत्य निरोध-गामिनी-प्रतिपदा है ये ही सत्य अष्टांङ्गिक मार्ग आर्य सत्यानुसार कहे जाते हैं। इनके सम्बन्ध में मैं पहले ही बता चुका हूँ।"

"भिक्षुओं ! दुःख परिज्ञेय है। पहले यह धर्मों में ज्ञात न था। इसने मुझे नेत्र दान किया। ज्ञान उत्पन्न किया। प्रज्ञा लाभ कराया, अनेक विद्याओं से मुझे परिचित कराया। एक ऐसी आलोक की ज्योति मेरे मानस पटल पर आयी जो अपूर्व थी।"

"हे भिक्षुओं ! यह दुख समुदय नामक दूसरा आर्य सत्य पूर्व धर्मों में कभी नहीं सुना गया। इससे मुझे चक्षु-ज्ञान, प्रज्ञा, विद्या, आलोक का दर्शन कराया। यह महान है। मैंने इस आर्य-सत्य दुःख को सवदा के लिये तिलांजलि दे दी। यह सर्व प्रथम मुझे ही ज्ञात हुआ। इससे मुझे चक्षु, ज्ञान, प्रज्ञा विद्या और आलोक का दान मिला।"

"भिक्षुओं ! दुःख-निरोध नामक तीसरा आर्य सत्य कभी भी धर्मों में नहीं सुना गया था। इसके कारण मेरे हृदय में ज्ञान, चक्षु, प्रज्ञा और आलोक उत्पन्न हुआ। यह पहले धर्मों में यहीं सुना गया था। यह मुझे ज्ञान, चक्षु, प्रज्ञा, विद्या, ज्ञान और आलोक से परिचित कराया। मेरे हृदय में क्रमशः ये उत्पन्न हुए।"

भिक्षु गण ! "यह दुःख निरोध नामक चौथा आर्य-सत्य है। यह धर्मों में पहले नहीं सुना गया था। मुझे प्रज्ञा लाभ हुआ। विद्या से परिचित कराया। आलोक उत्पन्न किया। यह दुःख निरोध गामिनी प्रतिपदा नामक आर्य सत्य भावना करने योग्य है। यह पहले कभी धर्मों में नहीं सुना गया था। इसने मुझे ज्योति ज्ञान दिया। मेरे चक्षुओं को खोला। ज्ञान लाभ कराया। प्रज्ञा दिखायी। विद्या ज्ञान कराया। आलोक दिया है। मैंने इस आर्य सत्य चौथी दुःख निरोध गामिनी भावना का मनन कर लिया है। यह धर्मों में पहले वर्णित नहीं था। इसने मुझे आँख दी। ज्ञान दिया। प्रज्ञा और विद्या दिखाई। आलोक उत्पन्न किया।"

प्रबुद्ध बुद्ध की इस वाणी को सुन पाँचों भिक्षु आश्चर्य चकित थे। प्रथम धर्म चक्र प्रवर्तन उत्सव सम्पन्न हुआ। आज पृथ्वी पर उस महा-वाणी का प्रथम संकेत हुआ, जो इसके पूर्व संसार को कदापि भी नहीं श्रवण करने को मिली थी। प्रबुद्ध सिद्धार्थ ने आगे कहा—"भिक्षु गण! जब तक इन पूर्व कथित आर्य सत्यों का पूर्ण रूपेण सम्यक ज्ञान मुझे न प्राप्त हुआ था, तब तक कदापि भी मैंने यह घोषणा नहीं की कि मैंने संसार के सभी मनुष्य, स्वर्ग के देव-गण, सभी श्रेष्ठ पृथ्वी के प्राणियों द्वारा न ज्ञात होने वाले सम्यक सम्बोधि (परम ज्ञान) को मैंने जान लिया।

भिक्षुओं! जब इन चार आर्य्य सत्यों का त्रिपरिवर्तित हो द्वादशाकार हुआ। तब मुझे सम्यक ज्ञान प्राप्त हुआ तब से मैंने देव लोक में, मार लोक में, श्रमण और ब्राह्मणीय प्रजा में, देवों और मनुष्यों में यह प्रकट किया कि मुझे अनुत्तर सम्यक संबोधि हुई, और मैं प्रबुद्ध बुद्ध हूँ। मैं निर्विकार चित्त ज्ञान, आलोक और विद्या प्राप्त कर इस अन्तिम बुद्ध

जन्म में विचरण कर रहा हूँ। यह मेरा अन्तिम जन्म होगा।"

इस सदुपदेश को सुन कौंडिन्य सर्व प्रथम भगवान के चरणों पर नत मस्तक हो गिरा। उसका अनुशरण कर अन्य चारो मित्रों ने भी उसी प्रकार बुद्ध के चरणों की वंदना की।

भगवान बुद्ध कई दिन तक इसी प्रकार शिक्षा देते रहे। उनकी गूढ़ तत्वात्मक शिक्षा से प्रभावित होकर कौंडिन्य, वप, भद्रिय, महानाम, और अश्वजीत ने महात्मा बुद्ध के धर्म को ग्रहण किया। भगवान ने सबको परिव्राज्य ग्रहण कर यह उपदेश दिया—"तुम सभी लोग तब तक ब्रह्मचर्य का पालन करो जब तक तुम्हें समस्त दुःखो को नाश करने के लिए उप-सम्पदा की प्राप्ति न हो जाय।"

इस प्रकार मैंने अभिसम्बुद्ध बुद्ध के प्रथम धर्म चक्र प्रवर्तन की कहानी उन बौद्ध भिक्षुओं को सुनायी। शिंग यू नाई तथा चाई नू शुंग प्रेरणात्मक दुःख की विशद किन्तु सरल व्याख्या सुन अत्यन्त प्रसन्न हो रहे थे।

चाइ नू शुंग बोला—"आज हमारा बड़ा भारी भाग्य है, जो हम भगवान के उसी पवित्र जगह पर आकर रह रहा है। कितना सुन्दर स्थान है सारनाथ।..." उसने अपनी बात पूरी भी न कर पायी थी तभी शिंग यू नाई ने कहा—"और यह कम भाग्य का बात नहीं की उसी स्थान का एक विद्वान के मुंह से हम पूरी कहानी अपना भगवान के विषय में सुन रहा है।"

मैंने कहा—"जी इस कृतज्ञता की कोई आवश्यकता नहीं। मेरा सौभाग्य है जो आप जैसे विद्यारत्वान विद्वानों के दर्शन का सौभाग्य मुझे प्राप्त हुआ। संक्षेप में जो कुछ मुझे आ रहा है मैं आपको सुनाता जा रहा हूँ।

"फिर आगे की बात आप बतावें। हमारा सुनने का बड़ा इच्छा है।" शिंग यू नाई ने कहा।

मैं पुनः आगे की कहानी स्मरण कर उन्हें सुनाने लगा।" "गौतम सिद्धार्थ अपने पंचशिष्यों सहित वाराणसी में आकर मधूकरी वृत्ति से भिक्षा ग्रहण कर अपना तथा शिष्यों को भोजन करा निर्भय ऋषि पत्तन के जंगलों में विचरण करते। मृग यहाँ निर्भीक हो खलते, प्रकृति की अद्‌भुत छटा थी। गौतम का आश्रम लता, शाद्वल, सुमनों के पुंज से आच्छादित था। यहीं दिन में वे विश्राम करते। शिष्य-गण आसपास बैठ दर्शन और मीमांसा शास्त्र का वाद विवाद करते रहते। गौतम की इस छोटी घास फूस की कुटिया में सम्पूर्ण संसार का ज्ञान एकत्र था।

वाराणसी के विख्यात लक्ष्मीपति पुत्र यश को यह संसार एक सामान्य माटी के आकर्षक मूर्ति-सा प्रतीत हुआ। उसके हृदय में वैराग्य की उत्पत्ति हुई। नीरव निशीथ में वह उठा, और तप करने के लिए ऋषिपत्तन के एकान्त जंगल की ओर चला। भगवान बुद्ध वहीं एक वृक्ष की शीतल छाया में आसन लगा बैठे थे। वह बढ़ता चला जा रहा था उसके मुख से निकल गया, "यह संसार घृणात्मक आकर्षणों से भरा पड़ा है। चारों ओर अंधेर है।"

प्रबुद्ध बुद्ध ने उसे अपने पास बुलाया, उसे शांति देने का वचन दिया। उसे दान, शील, स्वर्ग आदि की कथाओं को बता उसे शिक्षा दी। उसका अन्तर्चक्षु खुल गया। वह मोक्ष प्राप्ति का अधिकारी बन गया।

इसी बीच आसीत देवल की बहिन का पुत्र नाळक जो बुद्ध के जन्म के समय ही अपने मामा की आज्ञा से परिव्राजक बन गया था,

प्रबुद्ध बुद्ध के पास आया। उन्होंने अपने ज्ञान के आलोक से उसका हृदय खोल दिया। उसे दीक्षा दी। उन्होंने मौन धारण कर लिया।

पुनः जब यश घर पर न मिला, उसकी खोज प्रारम्भ की गयी। उसका पिता उसे खोजता-खोजता गौतम के आश्रम में पहुँचा। वहाँ उसे भी भगवान बुद्ध ने दीक्षा दी। वह भी विरागी हो गया। उसने अपने पुत्र को घर चलने के लिए बाध्य किया। भगवान बुद्ध ने कहा—"यह विरागी हो चुका है, लाड़ प्यार और संभोगों में अब यश न आ सकेगा।" "इसे यह अपना हठ मानने के लिए न बाध्य करो।"

पुनः जब पिता ने अपने पुत्र को ज्ञान के विस्तृत उद्यान में विचरण करते देखा। तो वह अत्यन्त प्रसन्न हुआ। उसने भगवान बुद्ध को अपने आवास पर भोजन के लिए आमन्त्रित किया। उसके आग्रह पर भगवान सिद्धार्थ उसके आवास पर शील के साथ गये। वहाँ उन्होंने उसके घर वालों को ज्ञानशील आदि के सम्बन्ध में बातें बतला अपने आश्रम को लौट आये।

यश का अनुकरण कर उसके अन्य चार मित्र जिनके नाम विमल, सुबाहु, पुण्यजीत और गवांपति थे, भगवान बुद्ध के शरण में आये। उनकी दीक्षा से उन्हें सन्तोष लाभ हुआ। धीरे-धीरे वाराणसी के ५२ व्यक्ति भगवान के आश्रम में गये। प्रथम वर्षा आवास उन्होंने ऋषिपत्तन में बितायी। इसी अवसर पर उन्होंने लगभग ६० व्यक्तियों को परिव्राजक बनाया। सैकड़ों गृहों में धर्मोपदेश किया। यहीं पर संघ का संघटन हुआ।

चातुर्मास बीता। बुद्ध देवने अपने सभी शिष्यों को अपनी ज्ञान दीक्षा का प्रसारण करने के निमित्त अनेक स्थानों पर भेजा। उन्होंने आज्ञा दी कि एक मार्ग पर एक ही परिव्राजक जाय। अपने धर्मकी उपा-

देयता को बता सभी लोगों को सांसारिक दुःख के जाल से छुड़ाने के लिए अपने शिष्यों को सभी दिशाओं में आश्विन मास की पूर्णिमा को भेजा।

स्वयं वाराणसी और ऋषिपत्तन को त्याग उस वेला की ओर अग्रसर हुए। उन्होंने सर्वप्रथम ज्ञान का आलोक हमारी इसी भूमि पर विस्तरित किया। हमारी भूमि धन्य है।" मैंने इतना कहा।

चाई लू शुंग ने सोफा के बगल में रखे टेबल पर से एक पुस्तक उठाते हुए उसके पृष्ठों को उलटना शुरू किया। शिंग यू नाई ने पूछा, 'आपका देश का विद्वान हमारा भगवान के सम्बन्ध में बहुत कुछ जानता है। किसी देश का कवि का भगवान का सम्बन्ध में बनाया गान आप जानते हैं।

मैंने कहा "क्यों नहीं।" क्या आप सुनना चाहते हैं। संकोच की क्या बात। मेरे देश के अनेक कवियों ने गौतम सिद्धार्थ के सम्बन्ध में कविता की है। मैं आपको सुनाऊँ?"

"जी!" दोनों बौद्ध भिक्षु जिज्ञासु की भाँति बैठ गये।

"आपने जो पुस्तक ले रखी है, मैं उसी में से कविता प्रबुद्ध बुद्ध के सम्बन्ध में सुना सकता हूँ। यदि आप उसे मुझे दे सकें तो बड़ी कृपा हो।" मैंने कहा—"आपके हाथों में वही पुस्तक है मैं उसी में से सुनाऊँगा।

"तो आपका कवि लोग हमारा भगवान पर बड़ा कविता लिखा है?" ऐसा कहकर चाई लू शुंग ने मेरे हाथ में पुस्तक दी। वह आगे बोला मेरा भाग्य देखें, मेरा हाथ में पुस्तक भी आयी तो ऐसा जिसमें भगवान का सम्बन्ध में कविता है।

मैं सस्वर पुस्तक के पृष्ठ उलट काव्य पाठ करने लगा। वे सुनने के इच्छुक थे हीं—

अरी वरुणा की शांत कछार !
तपस्वी के विराग का प्यार !
छोड़कर पार्थिव भोग विभूति, प्रेयसी का दुर्लभ वह प्यार।
पिता का वक्ष भरा वात्सल्य, पुत्र का शैशव सुलभ दुलार !
दुःख का कर के सत्य निदान, प्राणियों का करने उद्धार।
सुनाने आरण्यक-सम्वाद, तथागत आया तेरे द्वार।
अरी वरुणा की शांत कछार !
तपस्वी के विराग का प्यार !
मुक्ति जल की वह शीतल बाढ़, जगत की ज्वाला करती शांत।
तिमिर का हरने को दुखभार, तेज अमिताभ अलौकिक कान्त।
देव कर से पीड़ित विक्षुब्ध, प्राणियों से कह उठा पुकार—
तोड़ सकते हो तुम भव-बन्ध, तुम्हें है यह पूरा अधिकार।

अरी वरुणा की शांत कछार !
तपस्वी के विराग का प्यार !
छोड़कर जीवन के अतिवाद, मध्य पथ से लो सुगति सुधार।
दुःख का समुदय उसका नाश, तुम्हारे कर्मों का व्यापार।
विश्वमानवता का जय घोष, यहीं पर हुआ, जलद-स्वर-मन्द्र।
मिला था वह पावन आदेश, आज भी साक्षी हैं रवि-चन्द्र।
अरी वरुणा की शांत कछार !
तपस्वी के विराग का प्यार !
तुम्हारा वह अभिनन्दन दिव्य, और उस यश का विमल प्रचार।

सकल वसुधा को दे सन्देश, धन्य होता है बारम्बार।
आज कितनी शताब्दियों बाद, उठी ध्वंसों में वह झंकार।
प्रतिध्वनि जिसकी सुने दिगन्त, विश्ववाणी का बने विहार।

अरी वरुणा की शान्त कछार!
तपस्वी के विराग का प्यार!

मेरे सस्वर कविता पाठ से प्रभावित हो, वे झूम उठे। मैंने कहा—कहिये अच्छी लगी।"

शिंग यू नाई तथा चाङ् त शु ग दोनों बोल उठे। "यह पूछने की बात है। ऐसा मीठा गीत आज तक हमने नहीं सुनाया। आपका कवि धन्य है। जिसने इतना अच्छा गीत बनाया। किसका यह बनाया हुये।"

"जिनकी रचनायें हिन्दी मंदिर की गौरव पताका हैं, उन्हीं महाकवि जयशंकर 'प्रसाद' जो हमारी काशी के ही गौरव थे, उन्हीं की लेखनी का यह चमत्कार है। सारनाथ में मूलगंध कुटी विहार का जब उद्घाटन हुआ, उस समय महाकवि यह रचना की है।

उनके मन में आनन्द की एक लहर दौड़ गयी। उन्होंने अत्यन्त उच्चभावना इस कवि के प्रति अपने हृदय में स्थापित की।

थोड़ी देर बाद पुनः अपनी एक ही रट, "और आगे कहें" उन्होंने कहा।

मैं भी तथागत के जीवन के सम्बन्ध में जो भी याद था उन्हें सुनाता चला जा रहा था।

बुद्धं शरणं गच्छामि

आगे तथागत के जीवन की बातें मैं बताने लगा, "तथागत वाराणसी से अपने शिष्यों को विभिन्न प्रदेशों में धर्म प्रचार करने के लिये भेजकर स्वयं उरुवेला की ओर बढ़े। वे बढ़ते चले जा रहे थे। मार्ग में कप्पासिय कानन था। विश्राम करने के लिये गौतम बुद्ध वहाँ एक वृक्ष के नीचे रुककर आसन लगा कर बैठ गये। वृक्ष की शीतल छाया तनको शीतल कर रही थी। इसी बीच कुछ व्यक्ति गौतम के निकट आ गये। उनका अभिवादन कर उनसे सविनय पूछा, "देव! आपने किसी चपल रमणीको इधर से जाते देखा है।"

"कैसी रमणी! तुम रमणी को ढूँढ़ रहे हो। कौन हो तुम लोग! प्रबुद्ध बुद्ध ने पूछा उनमें से सबसे बड़े और विज्ञ व्यक्ति ने कहा, "देव! हमलोग *भद्र वर्गीय कुमार* हैं। इस सुहावनी वेला में सपत्नीक कानन विहार के निमित्त हम इस कापास्य कानन में आये हैं। हमारी पत्नियाँ भी हमारे साथ आयीहैं। हम तीन भाई हैं। मेरा सबसे छोटा अनुज अविवाहित है। उसके मनोरञ्जन के लिये हमलोगों ने गणिका बुलवायी थी। कल रात्रि में मद्य-पान कर हम मदमत्त हो

सपर्णांक कानन कुंजों में केलि कर रहे थे। निशा में वह गणिका हमारे निवास स्थल से बहुमूल्य कंठहार, द्रव्य तथा अन्य रत्न लेकर न जाने किधर चली गयी। उसी की खोज में हमलोग इधर विचरण करते हुए आपके पास आये हैं। आर्य ! सम्भवतः आपने उसे देखा हो।"

"तुम उस रमणी की खोज में लीन हो, केवल इसलिये कि वह तुम्हारे बहुमूल्य रत्नों को लेकर चली गयी है। पर क्या आप में से किसी व्यक्ति ने अपने जीवन के सबसे बड़े रत्न-धन अपनी आत्मा का साक्षात्कार किया है। आत्म साक्षात्कार यदि आपको हो जाता तो कदापि आप इन क्षुद्र सांसारिक आकर्षणों में न पड़ते। कुमार ! सबुद्ध बुद्ध ने कहा।

भगवान गौतम की बातों से इन कुमारों के अन्तः चक्षु खुल गये। उन्हें अपनी भूल ज्ञात हुई। सत् पथ पर बढ़ने के लिए वे अग्रसर हुए। भगवान बुद्ध के चरणों पर वे गिर पड़े। "देव ! हमारी आत्मा इन सांसारिक दुःखों में इतनी लिप्त है कि वह बाहर निकल ही नहीं सकती ! आप हमारा उद्धार करें।" उन्होंने एक साथ कहा।

गौतम बुद्ध ने उनको दीक्षा दी। दान की कहानी बतायी। ज्ञान का उपदेश दिया। स्वर्ग की महिमा से अवगत कराया। सांसारिक कष्टों राग, द्वेष, घृणा आदि से बचने की दीक्षा उन्हें दी ! संसार में गृहस्थ आश्रम में रहते हुए ब्रह्मचर्य नियम का पालना ही सबसे बड़ा धर्म है। आदि बातों से उन्हें पूर्ण अवगत भगवान बुद्ध ने कराया।

गौतम का उपदेश सुन तीसों कुमार बुद्ध की शरण में आये। उन्हें वैराग्य उत्पन्न हो गया। उनके अन्तः चक्षु खुल गये। हृदय में सत्य, अहिंसा और प्रेम की ज्योति जगमगाने लगी। गौतम ने उन्हें

चारों दिशाओं में धर्म का प्रचार करने के लिए भेजा। स्वयं वे उरु वेला की ओर चल पड़े। इन भिक्षुओं में जो सबसे छोटा था, वह *स्रोतापन्न* और जो सबसे बड़ा था *अनागामीवन* भिक्षुओं का पथ प्रदर्शन करता रहा।

यह निरंजरा नदी का तट है। अरविल्ल वन इसी निरंजना के तट पर स्थित था। यहीं "*काश्यपबन्धु*" तीन सर्व ख्याति विद्वान ब्राह्मणों की विद्यापीठ स्थित था। इन ब्राह्मणों का नाम क्रमशः विल्व काश्यप, नदी काश्यप तथा गयकाश्यप था।

बिल्वकाश्यप उरु वेला के जंगलों में अपने पूज्य शिष्यों सहित रहकर उन्हें वेद, मंत्र आदि की शिक्षा दिया करते थे। यह अग्नि धारण करने वाले ऋषि के नाम से विख्यात थे।

गौतम विल्व काश्यप के आश्रम में पहुंच चुके थे। उन्होंने उस ऋषि से पूछा! "आचार्य! क्या मुझे यहीं कहीं आपके दिव्य आश्रम के निकट रहने की आज्ञा मिल सकती है।"

विल्व काश्यप ने पूछा, "आप कौन हैं। वेश भूषा आपकी किसी ज्ञानी तथागत की भांति है। आप जहाँ चाहें रह सकते हैं।"

भगवान बुद्ध ने उत्तर दिया, "ऋषिवर! सांसारिक मोह, माया को जीत कर अपने ज्ञान का प्रचार चारों ओर मैं कर रहा हूं। मुझे लोग बुद्ध कहते हैं।"

बुद्ध का नाम तब तक विख्यात हो चुका था। विल्व काश्यप ने उनका स्वागत किया। तथागत के रहने योग्य सघन-कुंजों और वाटि-काओं से सुशोभित एक स्थान उन्होंने सादर प्रदत्त किया। इसी स्थान

पर एक सघन वृक्ष के नीचे तथागत आसन लगा रहने लगे। भगवान के अपूर्व ज्ञान का प्रभाव विल्वकाश्यप पड़ा। वह तथागत के अमर संदेशों को सुनता था। इससे वह इतना प्रभावित हुआ कि तुरत ही भगवान को अत्यन्य श्रद्धा की दृष्टि से देखने लगा। भगवान ने उसके मन को जीतने के लिये उस ऋषि को आध्यात्मिक दीक्षा दी।

तथागत ने दीक्षा देते हुए कहा, "ऋषीश्वर! जटा-जूट, धूल-धूसरित शरीर को कष्ट देनेसे कदापि मोक्ष और ज्ञान की प्राप्ति नहीं होती। शीत-काल में नग्न रहकर, शरद्कालीन वायु के झोकों में शरीर को प्रकोपित करने से, ग्रीष्म में अग्नि की ज्वाला में तप का अनशन धारण करने से कोई लाभ नहीं।"

विल्वकाश्यप को ज्ञान हुआ। उनके नेत्र खुले। उन्होंने सोचा कि यह कर्मकांड, यह तप, यह दर्प सभी दिखावा मात्र हैं। इनसे कदापि भी मोक्ष नहीं मिल सकता। तथागत के शरण में जाने से ही ज्ञान लाभ होगा।

विल्वकाश्यप ने उरविल्व के आसपास के निवासियों सहित जिनकी संख्या तीन हजार थी, बुद्ध के पथ का अनुशरण किया। सविधि दीक्षा दे बुद्ध ने उन्हें सन्यास ग्रहण कराया। अपने अग्रज को गौतमबुद्ध का शिष्य बना देख उसके अन्य दो बन्धु *नदीकाश्यप* और *गयकाश्यप* जो विख्यात कर्मकांडी और आचार्य थे, बुद्ध की शरण में आये। नदीकाश्यप निरंजना नदी के तीरपर रहकर ३०० ब्रह्मचारियों को वेद अध्ययन करता था। गयकाश्यप गया में रहकर २०० छात्रों यो शास्त्रदर्शन आदि की शिक्षा दिया करता था। तीनों विद्वान कर्मनिष्ठ ब्राह्मण अपने सभी छात्रों और परिचतों सहित बौद्ध हो गये। गौतम का साम्राज्य अब फैल रहा

था। यह साम्राज्य अपूर्व आनन्ददाता और ज्ञानचक्षु को खोलने वाला था, इस राज्य की प्रजा वर्ग सभी भिक्षु थे। सांसारिक सम्राट इसके आगे टिक नहीं सकते थे। गौतम ने सबको दीक्षा दे ब्रह्मचर्य धर्म का पालन करने की आज्ञा दी।

यह तथागत के उरु विल्व (उरुवेला) पहुंचने तक की कहानी है। अब कई हजार भिक्षु उनके साथ थे। तथागत की दीक्षा लोगों को रुची। जो भी सुनता उनका शिष्य बन जाता। बुद्ध की अमरवाणी दिग्दिगान्त में विस्तरित हो रही थी। जब बौद्ध तथागत के अमरवाणी को अपने जीवन का श्रेष्ठ संदेश बना उद्घोक्ति करते—

बुद्धं शरणं गच्छामि

धम्मं शरणं गच्छामि

संघं शरणं गच्छामि

उस समय इस वाणी की गुंज दिशाओं को उद्घोषित करती और सभी स्थानों से लोग आ-आकर बुद्ध, जो कि असार संसार में शांति के एकमात्र दाता थे उनके चरणों पर गिर भिक्षु बनते।...मैंने कहा—

वे दोनों व्यक्ति शांतचित्त बैठे मेरी बातें सुन रहे थे। मैंने कहा... आप लोगों को पहले मैंने सुनाया था कि महामानव बुद्ध जब योग साधना को जा रहे थे, उस समय राजगृह के नरेश को उन्होंने वचन दिया था कि प्रवज्या प्राप्त होनेपर यहाँ आकर दीक्षा करूँगा क्या, आप लोगों को याद है ?

"जी" उन्होंने एक साथ ही कहा, हमें पूरा-पूरा याद है। आप उसी का बात बता देंगे।

"जी हाँ" मैंने कहा और आगे की कहानी कहने लगा—"महात्मा बुद्ध देव अपने शिष्यों सहित अब गयशीर्ष पर्वत से राजगृह की ओर चले। यहाँ आकर वे यष्टिवन में विल्वकश्यप उनके अन्य बन्धुओं और विशाल भिक्षु समुदाय सहित रुके। जब महाराज बिम्बसार ने सुना कि बुद्ध भगवान हमारे पवित्र नगरी में पधारे हैं, वे प्रसन्न हो विद्वत समाज सहित महाराज का स्वागत करने यष्टिवन में गये। वहाँ उस विल्व तथा अन्य श्रेष्ठ विद्वानों सहित भिक्षुओं की विशाल गोष्ठी देख वे गौतम के प्रबुद्ध होने का निश्चय अपने मनमें कर, उनके चरणों पर झुक गये। साथ ही सम्पूर्ण समाज जो उनके साथ आया था, गौतम की वंदना करने लगा। आज एक ऐसे नरेश का मस्तक इस सामान्य भिक्षु के पवित्र चरणों पर झुका था जो जीवन भर भगवान के दर्शन की आस लगाये हुए था। सभी लोगों ने एक स्वर से गौतम के धर्म की प्रशंसा की। कितने व्यक्ति भिक्षु बने, इसकी गणना करना असंभव है। राज्य की स्त्रियाँ सोचतीं यह तपस्वी राजकुमार हमारे पति, पुत्रों आदि को बहकाकर भिक्षु बना रहा है। महाराज बिम्बसार ने गौतम से प्रार्थना की, "सत्प्रभु! मैंने अपने पूर्व जन्म में यह आशा की थी कि मैं यहाँ पैदा होकर राजा होऊँ, दूसरे आप मेरी नगरी में पधारें, तीसरे मैं आपके पावन चरणों की वंदना करूँ, चौथे मैं आपके सदुपदेशों को ग्रहण करूँ, पांचवें मैं उन सदुपदेशों को ग्रहण कर मोक्ष लाभ करूँ। यदि आप मेरे आवास पर अपने संघ के भिक्षुओं और विद्वानों सहित भोजन करने की कृपा करें तो मैं अपने को कृत-कृत्य समझूँगा।"

भगवान बुद्ध बिम्बसार के आग्रह पर महाराज के प्रसाद में संघ सहित गये। महाराज ने सबका हृदय से स्वागत किया और भोजन

कराया। साथ ही वेणुवन नामक अपना सुन्दर उद्यान संघाराम के निमित्त भगवान को सकुचते हुए अर्पित किया। भगवान बुद्ध ससंघ यहीं आकर रहने लगे। यहीं पर प्रतिदिन नगरवासी एकत्र होते। महाराज बिम्बसार आते। भगवान बुद्ध नित्य उन्हें शिक्षा देते। सांसारिक माया मोह की निःसारिता को त्याग विशुद्ध गृहस्थ जीवन बिताने का आदेश नगर वासी ग्रहण करते। राज्य के हजारों व्यक्ति भिक्षु बन संघाराम में ही रहने लगे।

राजगृह के निकट ही एक सम्पन्न विद्यापीठ की स्थापना कर संजय नामक आचार्य अपने दो सौ ब्रह्मचारियों सहित रहते थे। इसी विद्यापीठ में सारिपुत्र और मौद्गल्यायन सर्व प्रमुख ब्रह्मचारी के रूप में संजय के प्रिय शिष्य के रूप में रहते थे। संजय इन ब्रह्मचारियों का बहुत सम्मान करते थे और सर्व प्रमुख स्थान उन्हें अर्पित किया था। ये दोनों ब्रह्मचारी आपस में मित्र भाव से रहते थे, इन्होंने आपस में निश्चित किया था कि जिसे पहले अलौकिक ज्ञान प्राप्त होगा, वह एक दूसरे को बतलायेगा। इन दोनों के तथागत बनने का भी एक विशेष कारण था।

सारिपुत्र राजगृह के निकट स्थिर उपतिस्य नामक ग्राम का रहने वाला ब्राह्मण कुमार था। इसके पिता का नाम बंकन और माता का रूपसारी था। रूपसारी के नाम पर उसके पुत्र का नाम सारिपुत्र पड़ा। मौद्गल्यायन भी कोलित ग्राम के विद्वान ब्राह्मण सुजात का पुत्र था: इसकी माता मोग्दली के नाम पर इसको मौद्गल्यायन लोग कहते थे। इन ब्राह्मण कुमारों में बचपन से ही गहरी मित्रता चली आ रही थी। एक दिन ये ब्राह्मण कुमार सुप्रतिष्ठित नाम देवालय के मेले में आये थे। वहीं पर इन्हें परस्पर बात चीत करते-करते विराग उत्पन्न हो गया।

तुरंत ही ये संजय के आश्रम में जाकर उनके शिष्य बन ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करने लगे।

भगवान बुद्ध की आज्ञा पाकर अश्वजीत नामक बौद्ध भिक्षु राजगृह में मधुकरी ग्रहण करने के निमित्त जा रहा था। मार्ग में सारिपुत्र से अश्वजीत की भेंट हो गयी। सारिपुत्र आयुष्मान अश्वजीत के दिव्य ज्योतित आनन को देख अत्यन्त प्रभावित हुआ। उसने देखा कि इस भिक्षु ने संसार के ज्ञान को प्राप्त कर लिया है। इसे किसी भी कष्ट की चिन्ता नहीं। वह महान गुरु का योग्य शिष्य प्रतीत हो रहा था। वह अश्वजीत के पीछे-पीछे चला। मधुकरी प्राप्त कर जब अश्वजीत एकांत स्थल पर भोजन कर चुका, तब सारिपुत्र उसके पास जाकर विनम्र शब्दों में कहा—"आर्य! आपकी इन्द्रियाँ प्रसन्न हैं। आपकी कान्ति शुभ्र और उज्ज्वल है। आप किस महान आचार्य के शिष्य बन इस साधुगति को प्राप्त हुए हैं। आपने किस धर्म को ग्रहण किया है।"

अश्वजीतने सप्रेम उत्तर दिया, "शाक्य कुल में उत्पन्न, महाराज शुद्धोधन के पुत्र महाश्रमण का मैं शिष्य हूँ। उन्हीं द्वारा प्रवर्तित धर्म मैं मानता हूँ। मैंने अभी हाल ही में इस श्रेष्ठ धर्म को ग्रहण किया है, अतः उसके उद्देश्यों से पूर्ण परिचित न होते हुए भी दृढ़ता पूर्वक यह कह सकता हूँ कि आज के युग में ऐसी शांति दायक दीक्षा देने वाला एक भी आचार्य मेरी दृष्टि में न आया।"

अश्वजीत की बातों और व्यक्तित्व का चारित्रिक प्रभाव सारिपुत्र पर पड़ा। वह दौड़ा-दौड़ा अपने मित्र मौद्गलायन के पास आया और उसने उसे बताया मुझे आज अमृत प्राप्त हो गया। उसकी बात सुन मौद्ग-

लायन अत्यन्त प्रसन्न हुआ। सारिपुत्र ने सम्पूर्ण बातों से उसे अवगत कराया।

उन्होंने आपस में दृढ़ निश्चय कर भगवान बुद्ध के शरण में जाना ही उचित समझा। अपने अन्य शिष्य मित्रों से उन्होंने यह सुसमाचार कह सुनाया। आचार्य संजय के पास वे आये। उन्होंने संजय से कहा, "हम अब भगवान बुद्ध के पास जा रहे हैं। वही हमारे सच्चे गुरु हैं।"

संजयने रुष्ट हो अनेक लोभ इन तथागतों को दिये। पर वे जिस दिव्य आदेश की ओर बढ़े थे, उससे उन्मुख न होने वाले थे।

सारिपुत्र और मौद्गल्यायन विद्यापीठ के अन्य छात्रों सहित भगवान तथागत के पवित्र आश्रम वेणु-वन की ओर चले।

दोनों परिव्राजक आकर गौतम बुद्ध के चरणों पर गिरे। गौतम ने सब विधि उनकी सराहना की। उन्होंने घोषणा की कि आज से सारिपुत्र और मौदुगल्यायन हमारे प्रधान शिष्य होंगे। तथागत ने अपने पावन उपदेश से उनके हृदय में अपने प्रति अलौकिक श्रद्धा जगायी।

राजगृह में भगवान तथागत के द्वितीय चातुर्मास्य का यह अंतिम दिवस था। महाराज बिंबसार नित्य की भांति आज भी पधारे थे। हजारों की संख्यों में नगर-ग्रामवासी आज तथागत का दर्शन करने के लिये पूर्वानुसार आये थे।

सम्राट ने कहा, "हमने अपने जीवन की सभी आकांक्षाओं को प्राप्त किया। तथागत ने आज संसार के अज्ञान भवसागर में निराधार बहते हुओं के लिये एक प्रकाश-स्तंभ का कार्य किया है। आज तक जो अज्ञात था, उसे सर्व विदित बनाया है। अतः मैं पुनः बुद्ध की शरण लेता हूँ, संघकी शरण लेता हूँ धर्म की शरण लेता हूँ।

चारों ओर वेणुवन में उपस्थित प्रजा ने एक साथ कहा, "हम भी बुद्ध की शरण ग्रहण करते हैं, संघ की शरण ग्रहण करते हैं, धर्म की शरण ग्रहण करते हैं।

बुद्ध ने तीव्र आकांक्षा देख कहा, "जो कुछ मैं कहता हूँ, उसे आप दुहारते चलें। बुद्ध बोलते जाते, प्रजा एक स्वर से उसे दुहराती जाती।

बुद्धं शरणं गच्छामि

संघं शरणं गच्छामि

धम्मं शरणं गच्छामि,

जय घोष से आकाश गुंजरित हो रहा था। यह तुमुल नाद दिग् दिगन्त में प्रस्फुटित हो शांति का दिव्य संदेश सुना रहा था।

दोनों बौद्ध भिक्षु भी महामंत्र की भांति इस संकेत को दुहारा रहे थे। मुझे ऐसा प्रतीत हो रहा था जैसे भगवान् बुद्ध के इन महावाक्यों को वे उस समाज के साथ बैठे सुन रहे हैं और सम्पूर्ण जनता के स्वर में स्वर मिला बोल रहे हैं—

बुद्धं शरणं गच्छामि
संघं शरणं गच्छामि
धम्मं शरणं गच्छामि

कपिलवस्तु गमनम्

शिगयु नाई नथा चाई नू.शु'श के आग्रह पर पुनः मैंने आगे की कहानी प्रारम्भ की। मैं कह रहा था, राजगृह में रहकर गौतम बुद्ध ने अनेक लोगों को दीक्षा दी। चारों ओर उनके यश का गान होने लगा। सम्पूर्ण भारतवर्ष में लोग गौतम के धर्म के सिद्धान्तों को सुनते, उनकी शरण में आते ज्ञान लाभ कर भिक्षुगन संघ में रहकर अपने जीवन की सब से बड़ी साध पूरी कर पाते। यह समाचार महाराज शुद्धोधन के कानों तक पहुँचा। उनके प्रसन्नता की सीमा न रही। वे सोचते मेरा पुत्र आज सम्बुद्ध बुद्ध हुआ है, उसकी ज्ञान गंगा में कितने व्यक्ति अपने कलिमल और पापों को धोकर निर्मल बन रहे हैं। सम्पूर्ण कपिलवस्तु में सिद्धार्थ गौतम की ख्याति हो गयी। महाराज ने सोचा कि अब मेरी वृद्धा अवस्था आ गयी है। न जाने कब प्राण पखेरू उड़ जांय। अपने कुमार को देखे भी एक युग बीत गया। ८ वर्ष ''। ८ वर्ष का दिन कुछ होता है। क्यों न उसके दर्शन से मैं भी पवित्र हो जाऊँ? यह विचार कर उन्होंने राजगृह में बुद्ध के पास उन्हें साग्रह लिवालाने के लिए अपने मन्त्री-पुत्र को अनेक विद्वानों के साथ भेजा। पर महीनों बीत

गये, गौतम के साथ आने को कौन कहे वह अकेले भी लौटकर न आया। अब वे अपने मन्त्रों की ज्योति से अपने एकमात्र योग्य पुत्र को देखने की आशा में व्याकुल हो उठे। उन्होंने पुनः आठ बार अन्य योग्य व्यक्तियों को भेजा। पर सब वहीं रह जाते। एक भी राजनगरी को नहीं लौटकर आता था और सिद्धार्थ के सम्बन्ध में महाराज को सब कुछ बता उनकी दहकती छाती को ठंडा करता था। इधर जो भी गौतम के पास जाता वह उनकी अलौकिक प्रतिभा और धर्मोपदेश से इतना प्रभावित होता कि तुरंत ही केश कटा, शिर मुड़ा सात्विक मन से भिक्षुओं का वेश ग्रहण कर लेता। वह महात्मा गौतम के संघ में सम्मिलित हो जाता। किसी को नाममात्र के लिये भी तड़पते महाराज शुद्धोधन और उनके सन्देशों की याद न रह जाती। कभी भी किसी ने मुनि गौतम से एक बार भी उनके पिता की इच्छित अभिलाषा को न व्यक्त किया।

अन्त में महाराज ने कोई उपाय न देखकर अपने सबसे बड़े निजी सचिव के योग्य पुत्र काल उदयनी को, जो गौतम का बाल सखा तथा चपल मित्र था, राजगृह जाने का आदेश दिया। काल उदयनी अत्यन्त प्रसन्न हो इस कार्य के लिये तैयार हुआ। काल उदयनी जब चलने लगा तब महाराज ने अत्यन्त आर्द्र वाणी में कहा, प्रिय काल उदयनी! तुम मुझे गौतम सदृश्य ही प्रिय हो। वहाँ जाकर अन्य लोगों की भाँति तुम भी मेरी सुध न बिसरा देना। मेरी ओर से गौतम को समझा कर किसी प्रकार अवश्य कपिलवस्तु लौटा लाना। यदि तुम शीघ्र गौतम सहित लौट कर न आये तो सम्भवतः मुझे जीवित न पाओगे। संसार में पुत्र-वियोग सदृश्य कोई दुःख नहीं। सम्भवतः उसी दुःख में घुल-घुल मेरा सर्व-

नाश न हो जाय। ऐसा न हो कि कहीं गौतम के दर्शन से मैं वंचित हो जाऊँ।

काल उदयनी ने उत्तर दिया, महाराज! आप के जैसे विज्ञ पुरुषों के आधार पर ही आज सम्पूर्ण कपिलवस्तु आस लगाये हैं। आप ही जब इस प्रकार निराश हो जायंगे, तो और सब की क्या स्थित होगी। मैं प्रतिज्ञा करता हूँ जैसे भी होगा प्रबुद्ध गौतम को अवश्य इस स्थान पर ले आऊँगा। मैं प्रव्रिजित हो परिव्राजक के विस्तृत साम्राज्य की एक प्रजा बन, उचित समय देख उनसे अपनी जन्म-भूमि चलने का आग्रह करूँगा और अवश्य उन्हें कपिलवस्तु लाऊँगा। आप धीर न खो बैठें देव!" इतना कह काल उदयनी अपने साथियों सहित राजगृह के लिये चला।

शीघ्र ही काल उदयनी राजगृह पहुँच गया। वहाँ उसने अपने सखा सिद्धार्थ को एक अलौकिक ज्योति से दमकते हुये पाया। वे अपने धर्म का सदुपदेश संघ के भिक्षुओं और गृहस्थों के मध्य कर रहे थे। काल उदयनी महाराज गौतम की शिक्षा से इतने प्रभावित हुए कि तुरंत ही अपने साथियों सहित काशायवस्त्र धारण कर, चिविर पात्र सम्भाल भिक्षुक बन गया। वह संघ में जा मिला।

गौतम बुद्ध ने द्वितीय वर्षावास का समय करीब-करीब राजगृह में बिता लिया। हेमन्त ऋतु अपने बुढ़ापा पर रात में आँसू बरसाती, पर चाँद को छोड़ उसका कोई सुनने वाला न था। बसन्त का आगमन हुआ। गृह, मग, वन में विहँसते बसन्त के आगमन से प्रकृति ने अपना परिधान बदल दिया। वृक्षों ने नई कोपलें धारण कीं। खेतों में

दूर तक मखमली सी कोमल हरियाली फैल गयी। चारों ओर सूनेपन का साम्राज्य स्थापित हो गया। सभी लोग अपने अपने कार्यों से खाली हो आनन्द मना रहे थे। एक दिन ऐसे ही उचित वातावरण में स्थविर उदयी ने सम्बुद्ध सिद्धार्थ से कहा, "भगवन्! वर्षा ऋतु में केवल भिक्षुगण एक स्थान पर रहें। अन्यथा अन्य आठ मासों में सर्वदा वे विचरण करते रहें। धर्म का प्रचार आज इस युग में आवश्यक है। यदि आपको रुचे तो अब ससंघ देशाटन करें। मेरे विचार से जन्म-भूमि कपिलवस्तु की ओर चलें। वहाँ महाराज शुद्धोधन आपके वियोग में दुःखी हो कष्टमय जीवन यापित कर रहे हैं। आपका दर्शन पा वे पुनः अपनी पूर्वस्थिति में आ जायेंगे।"

उदयी की इच्छानुसार गौतम की आज्ञा से यात्रा की तैयारी प्रारम्भ हुई। सभी भिक्षुगण चलने के लिये तत्पर हुये। दो मास तक लगातार एक योजना प्रतिदिन चलकर भगवान गौतम अपने भिक्षु समुदाय सहित कपिलवस्तु पहुँचे। वहाँ पर न्यग्रोध नामक शाक्य ने गौतम का स्वागत अपने "न्यग्रोध कानन" में किया। उन्हें ससंघ रुकने का स्थान यहीं दिया।

जब महाराज शुद्धोधन ने सुना कि गौतम कपिलवस्तु में आगये तो उनके प्रसन्नता की सीमा न रही। अपने पुत्र का स्वागत करने आज पिता जा रहा था। वृद्ध पिता की कामना कई वर्षों के उपरान्त आज पूर्ण हो रही थी। उसकी सूखती खेती पुनः हरी होने वाली थी। उसकी आशालतायें शुष्क हो झुलस चुकी थीं पुनः हरित हो सुगंधिमय कामना के पुष्प बिखेरने जा रही थीं। महाराज के साथ उनके अन्य

शाक्य वंशी मित्र तथा नगर की और शाक्य की प्रजावर्ग और मन्त्रीगण "न्यग्रोध कानन" में गौतम का स्वागत करने के लिये चले। सुआसन पर बैठे गौतम मुनी आश्रम में भिक्षुओं को उपदेश कर रहे थे। महाराज शुद्धोधन ने आज संसार की सम्पूर्ण निधि पुनः एक साथ प्राप्त कर ली। उन्होंने सिद्धार्थ को देख एक अपूर्व आनन्द का अनुभव किया। गौतम अब कुमार नहीं रह गया उसे प्रज्ञा प्राप्त हो गयी वह युग का एकमात्र चिंतक और साधक बन बैठा। महाराज शुद्धोधन ने स्वयं गौतम को प्रणाम किया। उनकी इस नम्रता को देख अन्य साथ आये लोगों ने भी गौतम का अभिवादन किया। आज ज्ञान के सम्मुख राजत्व को हार खानी पड़ी थी। स्वयं महाराज कुमार का मस्तक अपने पुत्र के पावों पर था। सम्पूर्ण नगर ने सिद्धार्थ की जयध्वनि की। पर अब तक कोई न जान सका था कि सिद्धार्थ नहीं अपितु बुद्ध इस नगरी में आया है। उनके सम्पूर्ण संसार एक है। मात, पिता पत्नी, पुत्र सब एकमात्र भिक्षु के रूप में उसकी दृष्टि में प्रतिष्ठित हैं। गौतम के धार्मिक उपदेशों का श्रवणपान कर महाराज पुनः कपिलवस्तु लौट आये।

यह गौतम के कपिलवस्तु नगरी में पधारने के दूसरे दिन की बात है। अपने नित्य नियमानुसार अपने भिक्षुओं सहित गौतम काशायवस्त्र धारण कर, भिक्षा पात्र ले मधुकरी करने के लिए निकले हुए हैं। बिना किसी भेदभाव के वे घर-घर भिक्षा ग्रहण कर रहे हैं। यह वही नगरी है यहाँ सिद्धार्थ ने अपने बचपन और प्रारम्भिक यौवन के दमकते महकते दिन काटे हैं। इन्हीं राजमार्गों पर रथारूढ़ हो विचरण

किया है। सामने स्थित विशाल प्रासाद में ही तो वासनामय आकर्षण की सुनहरी जंजीरों में वे बाँधे गए थे। आज उसी नगरी में भिक्षा पात्र ले महाराज की 'आँखों के तारे सिद्धार्थ घर-घर मधुकरी माँग रहे हैं यह है परिवर्तन। नवीन परिवर्तन अपूर्व परिवर्तन। नगरवासी साश्चर्य क्यों प्रबुद्ध को देख रहे हैं। वे आपस में काना-फूंसी कर रहे हैं "यह क्या हो गया हमारे शासन सूत्र सम्हालने वाले कुमार को। क्या सूझी है इन्हें, न जाने किसका प्रभाव इन पर पड़ गया है। क्या इन्हें यह क्षुद्र कर्म शोभा दे रहा है।" किसी की बात से गौतम का कोई मतलब नहीं। वे अपने पथ पर ज्योतिपुंज की भाँति बढ़ते चले जा रहे हैं। प्रत्येक गृहस्त उनके शिष्य और वे जाकर "भिक्षा देहि" कह कर मधुकरी यापित कर रहे हैं।

यह राजमहल अत्यन्त निकट आ गया। किसी प्रकार महादेवि यशोधरा को ज्ञान हो गया कि उसके पति भिक्षु के रूप में नगर में घूम रहे हैं। आवास स्थल के झरोखे से माता यशोधरा इस दृश्य को देख आश्चर्य चकित रह गयीं। एक दिन वे रोयीं थीं इसलिए कि उनका पति उन्हें ज्ञान की खोज में चला गया। आज उनके नयन एकटक उसी पति के आगमन के अवसर पर पाँवड़े बिछा रहे हैं। वह गौतम को निर्निमेष देखती रह गयी। पर माया न मानी। उसके अश्रु न रुके। वह चिल्लाकर रोने लगी। महाराज शुद्धोधन ने यशोधरा को विकल देख उसके कक्ष में प्रवेश किया। यशोधरा ने आँखों के सामने ही महाराज को सब कुछ दिखा दिया। महाराज इस दृश्य को देख उसकी माया के वशीभूत हो गये।

गोपा के अश्रु नयनों के कोरमें अब तक संचित थे. वे मोतियों के रूपमें लुढ़क आये। न जाने वह प्रेमाश्रु थे अथवा हृदय पर पड़े फफोलों से रिस-रिस बहने वाला खारा पानी।

महाराज नग्न पाँव, घबड़ाये हुए अर्द्ध वस्त्र में ही राज मार्ग पर गौतम के सम्मुख आये। विह्वल हो बोल उठे, "तुम्हारी शिक्षा ने हमारे हृदय पटल को खोल दिया कुमार! मेरे हृदय का अन्धकार अब मिट चुका है। तुम्हारे दर्शन से मेरा पहले का शोक अब जाता रहा। पर मेरी एक प्रार्थना मानो। मुझे लज्जित मत करो वत्स! जब तुम इस राज्य में, अपनी ही समृद्धिवान नगरी में यह शिक्षा पात्र ले मधूकरी ग्रहण कर रहे हो, सच कहता हूँ कुमार! उस समय हृदय विदीर्ण हो जा रहा है। क्या तुमने समझ लिया कि मैं तुम्हें और तुम्हारे संघ के लिए भोजन की व्यवस्था कर न सकूँगा।

कुमार सिद्धार्थ ने उत्तर दिया, "आर्य! भिक्षाटन हमारी धर्म परिपाटी है, यह हमारी वंशागत परम्परा है।"

"तुम भूल कर रहे हो कुमार। हम श्रेष्ठ क्षत्री राज वंश में उत्पन्न हुए हैं। हमारे कुल में किसी ने आज तक किसीके सम्मुख कभी हाथ नहीं पसारा। भिक्षाटन तो दूर की बात रही।" महाराज ने कहा।

"लेकिन आर्य! मैं राजवंश का नहीं। यह तो आपका वंश है। मैं तो बुद्ध वंश में उद्भूत हुआ हूँ। बुद्ध ही हमारे पूर्व पुरुष हैं। भिक्षा वृत्तिपर ही वे सर्वदा आत्म सन्तोष करते आये हैं।" प्रबुद्ध सिद्धार्थ ने कहा, "मैं भी उसी वंश में आकर अपना कर्त्तव्य कर रहा

हूँ। आप मेरे पूज्य पिता हैं। ज्ञान-रत्नाकर मेरे मानस पटल पर हिलोरें ले रहा है। योग्य पुत्रके नाते श्रेष्ठ हीरे मोती मैं आपके चरणों पर अर्पित करता हूँ। क्योंकि सपूत वही है जो माता-पिता को प्रसन्न कर सके।" यह कह कर वहीं खड़े ही खड़े गौतम ने पिता को उपदेश दिया, "हे पिता! उद्योग कर आप सधर्म का आचरण करें। इह लोक और परलोक में धर्म का आचरण करने वाला सुख प्राप्त करता है। आप भूल कर भी अधर्म की ओर अग्रसर न हों। धर्म में जीवन व्यतीत करने वाला व्यक्ति स्वर्ग और संसार में सर्वदा सुख प्राप्त करता है।

यह उत्कृष्ट महाज्ञान दीक्षा को सुन महराज के अन्तःचक्षु पूर्ण रूप से खुल गए। उनमें स्थिरता आयी। महाराज शुद्धोधन ने सविनय आग्रह किया। तथागत पिता के आग्रह पर अपने भिक्षुओं सहित राजप्रासाद में गए। सर्वोत्तम भोज्य पदार्थ तथा पय से महाराज ने भिक्षुओं को तुष्ट किया।

भोजन कर भिक्षुओं सहित महाज्ञानी गौतम राजप्रासाद में रुके। उन्होंने राज कर्मचारियों अधिकारियों, सम्पूर्ण राज्य परिवार के मध्य अपने आध्यात्मिक शांति देने वाले धर्म को सुनाया। सभी लोगों को सद्धर्म द्वारा ज्ञान प्राप्त हुआ। इस आयोजन में सभी कुल रमणियों सहित महा प्रजावती ने भाग लिया, पर राज सिंहनी यशोधरा को न देख महाराज के आश्चर्य की सीमा न रही। जब लोग उसे बुलाने के ध्येय से गये तो उसने साफ इनकार करते हुए कहा, यदि मुझमें कोई

गुण है, मेरे चारित्रिक आकर्षण में कोई ज्योति है तो स्वयं यह तथा गत को मेरे पास खींचकर लायेगा। वहाँ जाना उचित नहीं।

महात्मा गौतम जब अपनी दीक्षा समाप्त कर चुके तो महाराज से आज्ञा ले सारिपुत्र और मौद्गलायन इन दोनों अपने प्रिय शिष्यों सहित गोपा-कक्ष में प्रविष्ट हुए। उन्होंने सारिपुत्र और मौद्गलायन से पहले ही कह दिया था कि मैं अपनी धर्म पत्नी से मिलने चल रहा हूँ। उसे अभी मैंने दीक्षा नहीं दी है। यदि अज्ञानवश वह मेरे अंगों का स्पर्श करे तो किसी प्रकार बाधा तुम लोग न उपस्थित करना।

यह गोपा का कक्ष है। गौतम आठ वर्षों बाद कक्षमें पधारे हैं। वह रात वह भयंकर रात...। उसीने तो गोपा से उसके प्राण प्रिय को छीन लिया था। उसके अरमानों को मसलकर गौतम सत् पथ की खोजमें अग्रसर हुए थे। नारी की सबसे बड़ी सम्पत्ति उसकी मांग का सुहाग, उसका पति ही है। गोपाने देखा, गौतम के सिर पर निकले छोटे छोटे घुँघराले चिकने, काले, कोमल केश अत्यन्त सुन्दर प्रतीत हो रहे हैं। सूर्य सदृश दमकता निर्मल आनन है। नासिका ऊँची, लम्बी तथा स्नेह सदृश ऊपर से नीचे तक उठी हुई हैं। केहरि सदृश भगवान के शरीर में बल है। अपूर्व ज्योति का सामंजस्य गोपा को उनकी शारीरिक बनावट में दिखाई पड़ा। उनके साथ ही दो सांवले, परमज्ञानी प्रतीत होने वाले भिक्षुक भी खड़े थे।" पास ही उसकी आँखों का तारा, हृदय का अवलम्ब, जीवन का सहारा उसका सुत राहुल खड़ा था। गोपा कृशकाय हो गयी थी। उसकी आँखें वियोग में रोते-रोते लाल हो गयी थी। इन आँखों में अब द्राक्षासव की लाली न थी, अपितु वह लाली वियोग के शृङ्गार की बिन्दी बनकर आँखों में चारों ओर फैल

गयी थी। यशोधरा ने मलिन काशाय वस्त्र धारण कर रखा था, धूलि धूसरित वेश और बिखरे केश, विहरिणी गोपा ने छवर्षों से लगातार भूमि-शयन, वल्कल वसन धारण किया था। जब पति को ही केश काटना पड़ा तो वह किसको दिखाने को अपने बालों की सुश्रूषा करे। उसकी वाटिका में अब गुलाब और गन्धराज के पुष्पों की सुगन्धि न बिखरती थी, बल्कि मिट्टी के पात्रोंमें कतार के कतार तुलसी के पवित्र पौधे लगे हुए थे, अब तक वह गौतम के दर्शन की आस लगाये बैठी थी।

बुद्ध को देख उसकी सिसकी बँध गयी। गौतम के चले जाने के बाद से निशा-दिन उसके नैन बरसते थे। इस समय उसके नेत्रों से प्रेम की अविरल धारा वह रही थी। वह अपने देव के चरणों पर गिर पड़ी। उसके विलाप से क्यों नहीं धरती का कलेजा फट गया। क्यों नहीं आकाश धराशायी हो गया?

गौतम ने उसे सान्त्वना देते हुए कहा, "देवि तुम धन्य हो। तुम्हारा पति अब पुत्र के रूप में तुम्हारे सम्मुख खड़ा है। वह तुम्हारा धर्म गुरु भी बनने जा रहा है। तुम्हारी पवित्रता, भक्ति, सौम्यता और अनुष्ठान ने मुझे प्रेरणा दी है। मुझे ज्ञान पहुँचाया है। मुझे महान् ज्ञान का दर्शन हो चुका है। तुम्हारे चारित्रिक गठन के आगे मैं श्रद्धा नत हूँ। तुम्हारी पवित्रता सर्वदा तुम्हें ज्ञान देगी। प्रसन्न रखेगी। ऐसी शिक्षा दे तथा अपने पवित्र धार्मिक उपदेशों की दीक्षा दे गोपा कच्छ से गौतम अपने संघ सहित आश्रम में पधारे।

आज कई दिन बाद पुनः गौतम बुद्ध ससंघ राजमहल में पधारे थे। आज नन्द का राज्य-तिलक होने वाला था। नन्द महा प्रजापति

का पुत्र तथा गौतम का अनुज था। अभी राजतिलक के आयोजन में देर थी। ब्राह्मणों और भिक्षुओं को भोजन कराया गया। भोजनोपरान्त गौतम ने अत्यन्त सन्निकट खड़े नन्द को अपने हाथ का भिक्षापात्र थमा दिया। गौतम ससंघ पुनः न्यग्रोधकानन को लौटे। उनके साथ-साथ उनका अनुज नन्द भी भिक्षापात्र लिए चला आ रहा था। राज्य की मोह को उसने ठोकर की तरह समझा। अपनी नवोढ़ा पत्नी को शीघ्र आने की सान्त्वना दे वह गौतम के साथ जाकर काशायवस्त्र त्रिविर आदि धारण कर सिर घुटा परिव्राजक बन गया। जब महाराज शुद्धोधन को खबर लगी वे अचेत हो गये। उनका सब किया कराया रसातल को चला गया। एक आँख तो पहले ही से फूट चुकी थी, जो दूसरी शेष थी उसकी भी ज्योति सदा के लिए अन्तर्विलीन हो गई। पर अभी राहुल रूपी हृदय चक्षु शेष था। जिससे कुछ आशा महाराज को थी।

एक दिन (तथागत के कपिलवस्तु आगमन के सातवें दिन) राहुल माता ने अपने पुत्र को अलंकृत कर इस आशा से तथागत के पास भेजा कि शायद पुत्र का मोह बड़ा प्रबल होता है, गौतम सन्यास त्याग कर गृह वापस आ जाय। यशोधरा ने अपने नन्हें कुमार से कहा, "वहाँ तुम्हारे पिता हैं। तुम निर्जीवक आर्य के साथ उनके पास जाकर अपनी पैतृक दायज माँगना। वे सबसे विद्वान तथा श्रेष्ठ ब्रह्मचारी हैं।

निर्जीवक के साथ राहुल अपने पिता के आश्रम में गया। इस बालक को देख, गौतम ने सारिपुत्र से पूछा, "यह कौन बालक है? यहाँ कैसे आया?"

सारिपुत्र ने उत्तर दिया—"देव यह आपके कुल का रत्न राहुल है। आप का पुत्र। तब तक राहुल गौतम के पास जा अपने बाल चपल शब्दों में कहने लगा, पिता? मुझे पैतृक दायज दें। श्रमण! मुझे मेरा अधिकार दो। मैं आप का पुत्र हूँ।

गौतम ने उत्तर दिया, "पुत्र! यह सभी व्यक्ति मेरे पुत्र हैं। जो भी मेरी शरण में आकर मेरा धर्म स्वीकार करता है वह मेरा पुत्र है। केवल तुम्हीं नहीं मेरे पुत्र हो। यदि तुम चाहो तो मैं अपने शुद्ध कुल की रीति के अनुसार तुम्हें दायज दे सकता हूँ।

भोला बालक इन बातों को क्या समझता, उसकी तो केवल एक रट थी "मुझे दायज दें" कहीं वह दायज का अर्थ न समझता रहा हो। पर माता की शिक्षा जो थी, उसे कैसे टाल सकता था। गौतम से सारिपुत्र ने कहा, इस बालक को प्रज्ञा लाभ कराओ। श्रद्धा, शील, सदाचार आदि की दीक्षा दे सब विधि योग्य बनाओ।" देव की आज्ञा से सारि-पुत्र ने सब विधि उचित शिक्षा दे, ८ वर्षीय कुमार को सन्यास ग्रहण कराया। अभी कुमार की बोली भी साफ नहीं निकल सकती थी। माता बिना अलग रात में अभी वह सो नहीं सकता था। उसके खेलने खाने की यह अवस्था थी। पर नन्हें कुमार की घुंघराली लटें अब अलग लटक रही थीं। उसके स्थान पर केशविहीन शिर था। रत्नखचित अमूल्य आभूषणों और रेशमी वस्त्रों का स्थान पीत वल्कल ने ले रखाया। यह छोटा सन्यासी सबकी आँखों की ज्योति बन आश्रम में रह, अपनी दायज पा गया। जिस समय आर्य सारिपुत्र बौद्ध के एक मात्र विख्यात धर्म के सन्देश को सुनकर राहुल को उसे दुहराने को रह

रहे थे वह दृश्य कितना आकर्षक था। तुतली बोली में कैसे राहुल इसे दुहराता था।

सारिपुत्रः—बुद्धं शरणं गच्छामि
राहुल—बुदंभ भरनं दत्थामि
सारिपुत्र—धम्मं शरणं गच्छामि
राहुल—दम्मन् छरनं दत्थामि
सारिपुत्र—संघं शरणं गच्छामि
तंगं धरणं दत्थामि

जब महाराज शुद्धोधन ने यह समाचार सुना, वे गिर पड़े। नेत्रों की पुत्र रूपी ज्योति जा ही चुकी थी। पौत्र था, वह भी नन्हा परिव्राजक बन गया। अब किसके सहारे वे जीते। उनकी हृदय ज्योति जिस पर उनका सबसे बड़ा विश्वास था वह भी मिट चुकी थी। महाराज ने गौतम से प्रार्थना की, आगे से किसी के भी बालक को बिना उसके संरक्षक की आज्ञा से परिव्राजक न बनाया जाय। गौतम ने संघ घोषणा की कि यदि कोई ऐसा करेगा तो उसे महा पाप होगा। आगे से संरक्षकों की आज्ञा बिना किसी को भी परिव्राजक नहीं बनाया गया।" मैं कह रहा था।

सिगपू नाई तथा चाई तू शुंग मेरी बातें सुन विह्वल हो गये थे। इस त्याग भरी प्रेम की कहानी सुन, उनकी आँखों से न जाने क्यों आंसू छलछला आया था। मेरी आँखों से अश्रु कण निकलने वाले थे। उनका कंठ रुंधा था, वे बोल न सकते थे।

मैंने पुनः कहा, सम्पूर्ण राज्य रसातल को मिल गया! अयोध्या में

जिस तरह राम के आने पर उनका स्वागत हुआ था, ठीक वही उत्साह, वही नवीनता कपिलवस्तु में थी। पर राम का राज्याभिषेक हुआ, गौतम तो परिव्राजक बना रह गया, उन्होंने अपने भाई को भी परिव्राजक बनाया, पुत्र को भी साथ लिया। पूरी नगरी सूनी कर चले गये। एक भी न था। राज सुख भोगने वाला, महाराज अकेले बिलखते रहते, पर होनी होके रही।' और....

इसी बीच ऊपर से पद्माकर ने आकर कहा—"बापू जी, भोजन तैयार है। आप लोग मोहनना लें।"

मैंने कहा 'चलो भाई परसो, खाना। यह लोग आ रहे हैं।"

"वाणी लिए बाबू जी! थाना पलोसा दया है।" तुतली बोली में वह बोला।

उन दोनों बौद्ध भिक्षुओं सहित मैं ऊपर गया। दिन के ग्यारह बज रहे थे। गरमागरम शुद्ध भोजन साथ ही हमने किया। आज हमें आनन्द का अनुभव हो रहा था। विदेशी बन्धुओं की इस सरलता पूर्वक दिये गये निमंत्रण को स्वीकार कर लेने पर अत्यन्त प्रसन्न था। उन्होंने भोजन की भूरी-भूरी प्रशंसा की।

पुनः लगभग १२ बजे उनको सप्रेम मोटर में बैठा, मैं सड़क से घर आया। कल शीघ्र आने का उन्होंने वचन दिया, आज कालेज बन्द होने के कारण मैं निश्चिन्त था।

———

सर्वे भवन्तु सुखिन:

अभी मैं सोया था ! इसी बीच मेरी माता जी ने आकर मुझे जगाया कई बार उठने पर करवट बदलने के बाद नींद टूटी। देखा भाष्कर की किरणें निकल आयी हैं। बिस्तर पर धीरे-धीरे धूप फैल रही है। सकपका कर उठा। माता जी खड़ी हो कह रही थीं—"दो दिनों में जो तुम्हारे जोगी दोस्त आ रहे हैं, कब से बेचारे नीचे आकर बैठे हैं और तुम्हारी नींद ही नहीं खुल रही है। क्या सोचते होंगे बेचारे ! जाओ जल्दी हाथ-मुंह धो लो। नीचे जाओ। कम से कम किसी को बुलाकर तो उसके साथ भले आदमी सा व्यवहार किया करो।"

कुछ बोल न सका। माता जी के आगे मेरी एक भी न चली। उनका उत्तर देने का साहस मुझमें न था। अपनी गलती स्वीकार कर उनसे क्षमा याचना मैंने करना ही उचित समझा। नीचे आया। झरोखे के छोटे छिद्र से मैंने देखा कि दोनों बौद्ध भिक्षु शिंग यू नाई तथा चाई नू शुंग बैठे मेरा इंतजार कर रहे थे। जल्दी से हाथ-मुंह धोकर मैं बैठक में पहुँचा। एकाएक घड़ी की ओर दृष्टि गयी। साढ़े सात बज रहा था।

मैं क्षमा माँगते हुए बोला—"मुझे आप लोग क्षमा करें। मैं आज

देर तक सो गया। मेरे कारण बड़ी देर तक आप लोगों का समय नष्ट हुआ।"

"जी ! कोई बात नहीं। हम अभी थोड़ी देर पहले ही तो आया है। ज्यादा देर से हम कहाँ बैठा है। आप शायद रात में देर तक जागता रहा।" शिंग यू नाई ने कहा।

"जी हाँ ! कल मुझे अपने मित्रों के आग्रह पर सिनेमा जाना पड़ा। रात एक बजे के बाद मैं सो सका हूँ, इसीलिए देर तक मैं सोता रहा।"

"हम लोगों ने आपको कष्ट दिया। आप अभी चाहें तो थोड़ा सो लें। हम बैठा रहेगा।" ताई चू शुंग ने कहा।

मैंने कहा," जी नहीं। मुझे अब नींद नहीं आ रही है। अब मैं यदि आप लोग कहें तो आगे की कहानी बताऊं।"

"जी ! जैसा आप सोचें, करें। दोनों बौद्ध भिक्षु एक साथ बोल उठे।

अपनी स्मृतिपटल में सँजोयी गयी बातें आगे मैं स्मरण कर कहने लगा, "कल मैंने आप लोगों को गौतम के कपिलवस्तु से विदा होने तक की कहानी बतायी है। उसके आगे क्रम बद्ध रूप से जहाँ तक जो कुछ मुझे स्मरण है, मैं आपको बताने का प्रयत्न करूंगा। हाँ, गौतम के जीवन के इस भाग की कहानी अत्यन्त विस्तृत है। मैं सुनाता चल रहा हूँ। जहाँ भी आपको शंका हो निःसंकोच पूछते चलें। संकोच की कोई आवश्यकता नहीं।"

ताई चू शुंग बोल उठा—"जी आप कहें। आप ऐसा कहता है कि हम दोनों पूरा-पूरा सब समझता चलता है। कहीं कोई हमको शंका नाहीं होता। हम पूरा पूछ लेगा जहाँ हमको अड़चन होयगा।"

मैं कुछ कहने ही वाला था कि शिग यू नाई अत्यन्त विनम्र हो बोला,—"आज सारनाथ में सभी भिक्षुओं की एक गोष्ठी साढ़े नौ बजे आरम्भ हो जायगी, उसमें हम दोनों का रहना भी जरूरी है। आप आज कम में भगवान की कहानी पूरा-पूरा कहें क्यों कि वहां समय से जाना है।"

मैंने कहा,—"तो मैं आगे तथागत के जीवन की प्रमुख घटनाओं की ओर संक्षेप में दृष्टिपात करूंगा। सभी प्रमुख बातें आ जायगी। कुछ छूटने न पायेगा। आप समय से गोष्ठी में पहुँच सकेंगे।" और मैंने तथागत बुद्ध की कहानी प्रारम्भ की। मैं कह रहा था—"कपिल वस्तु से राहुल कुमार को दीक्षित कर बुद्धदेव मल्ल देश अनमा नदी के किनारे स्थित अनूपियः नामक आम्रवन में आकर रुके। यहीं पर कपिल वस्तु से नरराज बुद्ध की शांतिदायक शरण में अनुरुद्ध, आनन्द, भद्रिय, किमिल, भृगु, तथा देवदत्त नामक छह राजकुमार आये। उपाली नामक नापित भी इनके साथ था। सभी कुमार मार्ग में आकर उपाली को अपने रत्ना-भूषण वस्त्रादि सौंप कर उसे वापस हो जाने के लिये कहे। पर उसके अन्तःचक्षु खुल गये। वह भी गौतम के आश्रम में इनके साथ पहुँचा। भगवान बुद्ध ने उसकी शील और श्रद्धा के सम्मुख अत्यन्त प्रभा-वित हो सर्वप्रथम उसे उपदेश दिया। उसको ज्ञान लाभ कराकर पुनः इन छह राजकुमारों को भी उन्होंने अपनी दीक्षा दी। गौतम ने केवल इस कारण से उपाली को पहले दीक्षित किया कि शाक्य-कुमार उसे नीच न समझें और उसका अपमान न करें। ये सभी शिष्य गौतम के मुख्य कार्य कर्त्ता हुए। आनन्द भगवान का एक मात्र उत्तराधिकारी बन विनय

पीटक का संग्रह करने वाला बना। उपाली विनय पीटक का आचार्य बना और दिव्य चक्षु बनने का सौभाग्य भद्रिय को प्राप्त हुआ। विनय पीटक में भिक्षुओं के धर्म कर्म एवं विधान का विस्तृत वर्णन किया गया है।

इन कुमारों और उपाली नापित को दिव्य दीक्षा दे भिक्षु बना कर गौतम राजगृह आकर विनीय वर्षा विहार करने लगे। उनके साथ उस समय उनके सभी भिक्षु शिष्य थे।

यहीं पर गौतम ने मगध के महा तीर्थ नामक ग्राम के महाकश्यप को दीक्षा दी। इन्हें भगवान ने अपना शिष्य भी बनाया। इस विद्वान का नाम पिप्पल था। वह युग के महा पंडित कपिल का सुपुत्र था। माता पिता के देहावसानोपरान्त उसके हृदय में इस निःसार संसार के प्रति घृणा उत्पन्न हो गयी। यद्यपि उस पर लक्ष्मी की कृपा थी, फिर भी विचार बुद्धि-सम्पन्न विद्वान होने के कारण वह इन सभी वस्तुओं को ठीकरी सदृश्य तुच्छ समझता था। एक प्रतिष्ठित विद्वान गृह में उसका परिणय संस्कार एक रूपवती रमणी भद्रकापिलानी से हुआ था। एक दिन धूप में उसके गृह-चाकर अन्न फैला रहे थे। पिप्पल का हृदय हिंसा के प्रति उस समय विद्रोह कर उठा जब उसने देखा कि किस प्रकार अन्न में से मटर के कीड़ों की भांति बिलबिलाते हुए जीव (पाई, ढोला) निकल-निकल कर रेंग रहे हैं। बुभुक्षित काग, तथा पक्षीगण किस निर्दयता पूर्वक उनका हनन कर, भक्षण कर रहे हैं। एक दूसरे को संसार में सब शोषण करते हैं। बलवान निर्बल को अपने वश में करता है। उसे स्वयं अपने प्रति घृणा उत्पन्न हुई, जब उसने सोचा कि मैं स्वयं

इन राजाओं, सेवकों को बन्दी बनाये हूँ। इन्हें मेरा अंकुश मानना पड़ता है। यह ठीक नहीं।

इसी प्रकार के भाव कुमार उसके हृदय में उत्पन्न हो रहे थे। उसने अपनी पत्नी से विचार विनिमय किया। सभी प्रकार से गृहस्थाश्रम को दुःखमय देख, उन्होंने माया के जंजाल से छुटकारा पाने के लिए गृह त्याग किया। तथागत गौतम की शरण में जाने का निश्चय महाकाश्यप अपने मन में पहले ही से कर चुका था। वह मार्ग में सपत्नीक बढ़ता चला जा रहा था। उसके मन में भाव उठा कि मैं संसार त्याग कर रहा हूँ। फिर पत्नी को साथ लेने से माया नटी हमारा पीछा नहीं छोड़ पायेगी। इसके उसका मन दो भावनाओं में बंट चुका था। उसने अपनी पत्नी से कहा- "देवी! हमें और आपको वैराग्य उत्पन्न हो चुका है। इस निमित्त गृह त्याग हमने किया। यदि हम साथ रहे तो पुनः राग उत्पन्न होगा। पति-पत्नी का प्रेम सम्बन्ध स्थायी होता जायगा। अतः आगे वाला मार्ग जहाँ दो भागों में विभक्त हुआ है, वहाँ से हम दोनों अलग-अलग मार्ग की ओर अग्रसर हो जायें। अपने पथ पर एकाकी बढ़कर इस अथाह दुःख सागर से दूर बहुत—दूर चले जायें।"

इसकी पत्नी इस बात से अत्यन्त खिन्न हो बिलखने लगी। पर महाकाश्यप जो सांसारिक वातावरण से बहुत ऊपर उठ चुका था, अपने मार्ग पर बढ़ता महामुनि गौतम के पास चला जा रहा था। मार्ग में ही शीघ्र एक पिप्पल वृक्ष के नीचे गौतम सुखासन पर विद्यमान दिखलायी दिये। महाकाश्यप ने देखा बुद्ध भिक्षुओं के मध्य बैठ शिक्षा दे रहे थे। वह भी जाकर इस वृक्ष के नीचे भिक्षुओं की जमात में बैठ गया।

गौतम ने ज्ञान, धर्म, शील, व्रत, संकोच' दान, ब्रह्मचर्य आदि की शिक्षा दी। वह विशेष प्रभावित हो तुरंत काशाय चीवर आदि धारण कर परिव्राजक बन गया। गौतम की शरण में आकर उसने प्रव्रज्या ग्रहण की। उसका जीवन सफल हो गया।

गौतम अब राजगृह से तृतीय चातुर्मास बिताकर लिच्छिवी गये। राजगृह से उत्तर की ओर वैशाली का राज्य था। यह गंगा के बांये किनारे पर स्थित था। अपने युग में समृद्धि और आकर्षण की दृष्टि से यह अपने ढंग का अकेला समृद्धशाली राज्य था। जिस समय गौतम यहाँ पहुँचे, इसके पूर्व राज्य में चारों ओर अकाल के कारण जनता त्राहि-त्राहि कर रही थी। गौतम के पहुँचते ही इतनी वृष्टि हुई कि लोगों के मन में आनन्द की लहर दौड़ गयी। जनता प्रसन्न हो गयी। तथागत यहीं एक सुन्दर आम्रवन में आकर अपने भिक्षुओं सहित रहने लगे। यह आम्रवन एक गणिका का था। वह अपने समय की एकमात्र वैशाली की हाव-भाव प्रदर्शित करने वाली सर्वश्रेष्ठ नर्तकी थी। उसके रूप कमल पर मदमत्त युवक भौंरे मड़राते रहते पर वह रसपान किसी भी मूल्य और परिस्थिति में न कर पाते। वह वैशाली की नगर वधू थी। रूप लावण्य की खान थी। उसका नाम अम्बपाली था।

जब अम्बपाली को ज्ञात हुआ कि भगवान गौतम उसी के आम्रवन में रुके हैं, उसकी प्रसन्नता की सीमा न रही। वह रथारूढ़ हो, महाराज तथागत के पास पहुँच उचित, अभिवादन कर बैठ गयी। महाराज गौतम उस समय गृहस्थाश्रम की शिक्षा गावों से आये नागरिकों को दे रहे थे। अनेक धार्मिक आध्यात्मिक बातों को सुनने के बाद अम्बपाली गणिका ने सकुचाते हुए कहा—आर्य! कल मेरे आवास पर ससंघ भोजन करने की

मेरी प्रार्थना स्वीकृत कर मुझ तुच्छ म्लेच्छा का उद्धार करें।"

भगवान गौतम ने उसे वचन दिया। भगवान के पावन चरणों का स्पर्श कर अम्बपाली चली आयी।

जब लिच्छिवी नरेश को ज्ञात हुआ कि महाप्रभु गौतम ने अम्बपाली के यहाँ कल भोजन करना स्वीकार किया है, वे बड़े चिन्तित हुए। गणिका से महाराज ने कहा—"अम्बपाली! एक लक्ष कार्षापण (मुद्रा) तू ले ले कल भगवान के भोजन कराने का अधिकार हमें दे दे। भगवान का हम स्वागत कर सकें।"

गणिका ने उत्तर दिया—"महाराज! एक लक्ष नहीं, अपितु सम्पूर्ण राज्य यदि आप दें तो भी इस पावन अधिकार से मैं अपने को वंचित न कर सकूंगी। इसके लिए मुझे क्षमा करें।"

महाराज गणिका के इस उत्तर से अत्यन्त लज्जित हो स्वयं तथागत के निकट उनके आवास आम्रवन में आये। तथागत का चरण स्पर्श कर वे बैठ गये। धर्मोपदेश श्रवण उपरान्त ससंकोच उन्होंने कहा—"देव, कल हमारे प्रासाद को यदि आपके पावक चरण पवित्र कर सकें और आप ससंघ वहीं भोजन करें तो हम अपने को धन्य समझेंगे।"

"राजन! कल का तो भोजन करने का आमन्त्रण अम्बपाली गणिका का मैंने स्वीकार कर लिया है। यह कैसे सम्भव है।"
नरेश के मुख से निकला—"सचमुच तू धन्य है अम्बपाली। तू महान है।"

दूसरे दिन गणिका ने सर्वोत्तम व्यंजन बनाये। स्वयं पुनः तथागत को तथा भिक्षुओं को आमन्त्रित करने गयी। सादर लिवाकर गणिका ने तथागत को दिव्यासन पर बैठाया। ससंघ गौतम बुद्ध को अम्बपाली ने

सर्वोत्तम भोज्य पदार्थ अपने हाथों अर्पित किये। भोजन कर लेने के बाद उसने विनम्र स्वर में निवेदन किया—"देव ! जिस आम्रवन में इस समय आपका आवास है, वह मेरी ओर से संघाराम निर्मित करवाने के लिए सादर स्वीकार करें।"

तथागत ने मौन हो स्वीकृति दी। गणिका ने पावन पद प्राप्त किया। उसका उद्धार हुआ।

+ + +

लगभग १२ दिन रहकर गौतम बुद्ध, महाराज का आतिथ्य स्वीकार कर लिच्छिवी से विदा हो कपिल वस्तु की ओर बढ़े। महाराज शुद्धोधन की अन्तिम अवस्था थी। उनके जीवन की अन्तिम साध गौतम को देखने की रह गयी थी। अन्तिम समय पिता की आकांक्षा पूरित हुई। महाराज के जीवन की सबसे बड़ी साध युग-तथागत के मुख से दीक्षा सुनने की थी, वह सफल हो गयी। भगवान गौतम ने अपने पूज्य पिता को अंतिम समय उच्च दीक्षा दी। महाराज की आत्मा शान्त हुई। वे शक्ति पूर्वक प्राण त्याग कर सके। महाराज के न रहने से सम्पूर्ण समाज आज दुःखी हो गया। गौतम जो तथागत थे, आज उनको सिद्धार्थ बनना पड़ा। अपने पिता का स्वयं उन्होंने अग्नि संस्कार किया। शास्त्र विधि वर्णित सविधि अंत्येष्टि सिद्धार्थ ने की। शोक-संतप्त परिवार को उन्होंने अपनी ज्ञान रूपी शिक्षा का अमृत-पान कराया।

विमाता महाप्रजावती ने अपने लिये भिक्षुणी बनने की प्रार्थना की। पर गौतम ने अस्वीकार कर दिया। महा-प्रजावती के लिये संसार सूना था। करती तो वे क्या-करतीं। अब महाप्रभु गौतम कपिलवस्तु वासियों को हर प्रकार स्वांनना दे स्वयं वैशाली के मार्ग पर अग्रसर हुए। निकट ही कूटागार (वैशाली) के पास वे रुके वहाँ उन्होंने अपना पांचवाँ चातुर्मास्य बिताया!

कौशांबी नगरी के महाराज्य पुरोहित के पुत्र महाकात्यायन जो कि वेद न्याय धर्म के ज्ञाता थे, भगवान तथागत के दर्शन के निमित्त उनके निकट आये। उनके नरेश महाराज चण्ड प्रद्योत की भगवान को अपने नगरी में देखने की बड़ी प्रबल अभिलाषा थी। महाकात्यायन के साथ उनके बिन अन्य सात शिष्य थे। भगवान की पावन, आत्मपरिचय कराने वाली दीक्षा सुन वे अत्यन्त प्रसन्न हो तथागत के चरणों में गिर पड़े। उनके अन्य सहयोगी उनका साथ दे रहे थे। भगवान बुद्ध ने उन्हें प्रव्रजित किया! धर्मोपदेश सुन वे विशेष प्रभावित हुए।

नम्र शब्दों में महाकात्यायन ने प्रबुद्ध बुद्ध से निवेदन किया, देव! आप एक बार हमारी नगरी में दर्शन दें। हमारी प्रजा तथा महाराज को कृत्य-कृत्य करें।" पर गौतम ने उत्तर देते हुए कहा,—"परिव्राजक! कौशांबी में जाकर धर्म का प्रचार करो। कुमार्ग पर आये व्यक्तियों को मेरी धर्म ज्योति द्वारा सुमार्ग दिखाओ! मैं यदि अवसर मिला तो कभी आऊँगा।"

स्थविर महाकात्यायन बुद्ध देव की आज्ञा प्राप्तकर अपने सहयोगियों सहित कौशांबी नगरी को लौट गये। उन्होंने मार्ग में तेलप्पनाली नगर में मधुकरी द्वारा 'क्षुधा निवारण करना चाहा। एक अत्यन्त दरिद्र कन्या

ने अपने सुनहरे केश विक्रयकर भोजन कराया। कौशांबी पहुँच स्थविर महाकात्यायन ने बुद्ध के उपदेशों को घर-घर में पहुँचाया। शांति-दायक संदेश जनता को सुनाये। सविधि महाराज की आज्ञा प्राप्तकर पुनः स्थविर बुद्ध देव के पास लौट आये।'

महाराजशुद्धोधन स्वर्गवासी हुए। महाप्रजावती ने गौतम से भिक्षुणी बनने की प्रार्थना की, पर उन्होंने इसे स्वीकार न किया। अब महाप्रजावती शाक्य कुल की पाँच सौ रमणियों को ले पद-यात्रा करते हुए, वैशाली में भगवान तथागत के संघ के निकट पहुँची! उनकी हिम्मत न पड़ती थी कि जाकर गौतम से प्रार्थना करें। इसी बीच भगवान के सर्वश्रेष्ठ योग्य शिष्य आनन्द ने राजमाता को देखा।

आनन्द ने राजमाता को बिलखते हुए देख, यहाँ इन स्त्रियों सहित आने का कारण पूछा।

महाप्रजावती ने रोते हुए कहा—"हमने प्रव्रज्या लाभ प्राप्त करने की आकांक्षा बुद्ध से कपिलवस्तु में की। पर गौतम राजी न हुआ मैं। इस निःसार संसार में पति, पुत्र, स्वजन बिना रहकर क्या करूँगी। पुनः मैं यहाँ एकबार इस आशा से आई हूँ कि शायद गौतम का हृदय पसीज जाय। वह हमें भिक्षुणी बना एक स्थान अपने संघ में देदे।" यह एक माता के शब्द थे।, जो अपने युग पुरुष पुत्र से शिक्षा ग्रहण करना चाहती थी!

आनन्द सान्त्वना दे महाप्रभु के पास गया। महात्मा बुद्ध ने अपनी अनुमति न देते हुए कहा—"क्या कभी अबला प्रव्रज्या प्राप्त कर सकती है?"

आनन्द ने वितर्क पूर्ण विनय गौतम देव से किया। अन्ततः गौतम ने स्त्रियों को धर्म स्वीकार करा भिक्षुणी के रूप में रहने की आज्ञा दे दी! पर अष्टांग धर्म नियम का पालन आवश्यक था।

आनन्द ने प्रसन्न हो, यह सुसमाचार महाप्रजावती को सुनाया। उनकी प्रसन्नता की सीमा न रही। तुरन्त ही सभी महिलाएँ जो महाराज्ञी के साथ आयी थीं, अष्टांगी धर्म स्वीकार कर भिक्षुणी बनी। आज राज माता अपने पुत्र तथागत के आश्रम की एक भिक्षुणी थीं। इस प्रकार भिक्षुणी संघ की स्थापना भी हुई। इस संघ में नित्य महिलाएँ आकार अष्टांगी धर्म को स्वीकृत करतीं। दूसरे वर्ष यशोधरा, महाकाश्यप की पत्नी भद्राकापिलानी, धर्मदीना तथा नंद माता उत्तरा जैसी प्रमुख नारियों ने भी उपसंपदा स्वीकार की। संघ में अब नारी-पुरुष भिक्षु-भिक्षुणी के रूप में सात्विक ब्रह्मचर्य का पालन कर रहने लगे।" मैंने कहा—"आप लोग समझे या नहीं। आप लोगों को समय से वहाँ पहुँचना हैं, इसलिये मैं कुछ शीघ्रता कर रहा हूँ। जहाँ मेरी बात न समझें स्पष्ट कहें।"

"आप तो इतने अच्छा बोलता है कि अपना भगवान का साक्षात् दर्शन हमको हो जाता है। आपका बात अच्छी तरह हमारा समझ में आ रहा है। क्या हम समय से गोष्ठी में पहुँच जायगा ?" शिंग यू नाई ने कहा—

"जी हाँ! आप समय से पाँच मिनट पहले पहुँच सकेंगे।" और मैंने जम्बू को आवाज लगायी—"जम्बु.....गु.....गु! नीचे हम लोगों को जलपान दे जाओ।"

हम लोग इधर-उधर की बात कर रहे थे। बात ही बातों में चाई तु.सुंग ने कहा—

"हम लोगों का विचार आज एक बजे की गाड़ी से लुम्बिनी जाने का है। आज हमको आप पूरी कहानी सुना पायगा ?"

"अभी इतनी जल्दी किस बात की है। कुछ दिन आप लोग रुकें। फिर तो जाना है ही।" मैंने शिष्टता के नाते कहा—

हम चार-पाँच दिन से आया है। अब कल दूसरा जगह देखने का विचार करता है। हमारा प्रोग्राम निश्चित हय।" शिंग यू नाई ने कहा— "फिर आने पर आपका दर्शन हम जरूर-जरूर करेगा।"

मैंने कहा—"अच्छा! मैं आपको जैसे भी होगा अवश्य पूरी कहानी सुनाऊँगा। हाँ! जलपान तो कर लें। चाय ठंडी हो रही है।"

मेरे साथ मिलकर जलपान करने के बाद वे दोनों भिक्षु पुनः मेरी बातें सुनने के लिये जिज्ञासु की भाँति बैठ गये।

मैंने आगे की कहानी प्रारम्भ की—"यह वर्षा काल की सुहावनी ऋतु थी। भगवान बुद्ध वेणु वन में बिम्बसार नरेश के आग्रह पर ससंघ सप्तम चातुर्मास्य बिता रहे थे। उसी समय कोशल (श्रावस्ती) का एक लक्ष्मी-पूत राज नगर के एक सर्वमान्य मित्र सेठ के यहाँ व्यापार के निमित्त गया हुआ था। उसके साथ हजारों गाड़ियों में बहुमूल्य पदार्थ थे। उन्हीं के विक्रय के निमित्त वह राज नगर आया हुआ था। उसका नाम अनाथ पिण्डिक (सुदत्त) था।

अनाथ पिण्डिक को जब ज्ञात हुआ कि गौतम बुद्ध यहीं पास के वेणुवन में हैं, वह तथागत के दर्शन के निमित्त वहाँ गया। महात्मा गौतम के दर्शन और उपदेश से अपने मन को पवित्र कर उसने बुद्ध धर्म ग्रहण किया। उसने महामुनि बुद्ध को संघ के लिए अनेक महा दान दिया।

सुदत्त ने राजगृह और श्रावस्ती के मध्य के विशालकाय संघारामों का निर्माण करवाया। लगभग पैंतालिस योजन की दूरी में कई करोड़ द्रव्य खर्च करके एक योजन पर विहार बनवाया गया था। अवर्णनीय सुन्दरता इन विहारों की थी। जेतवन के आस-पास की सम्पूर्ण भूमि उसने वांछित द्रव्य देकर क्रय कर ली थी। इन्हीं में पृथक-पृथक महा स्थविरों का निर्माण कराया गया। गौतम के लिये सबके मध्य में एक आकर्षक कुंजों से आच्छादित कुटी का निर्माण भी कराया गया। जब सभी संघाराम और विहार बनकर तैयार हो गये, महाधनिक सेठ ने बहुत बड़ा उत्सव 'विहार-पूजन' के उपलक्ष में किया। वह स्वयं पुनः गौतम मुनि को आमन्त्रित करने गया। तथागत के जेतवन प्रवेश तिथि को उसने भारत के सम्पूर्ण भागों के प्रत्येक नरेश को आमन्त्रित किया, सभी व्यवसायी आये थे। ब्राह्मण, ऋषि, कर्म कांडी तथा वेदाचार्य गण हजारों की संख्या में पधारे थे। उत्सव प्रारम्भ हुआ। पताकायें फहराई गईं। अलग-अलग विभिन्न वर्गों के लोग सोल्लास गाजे-बाजे के तुमुल घोष में सादर तथागत की अगवानी के लिये चले।

एक अपूर्व ज्योति से चमकते हुए दिव्य व्यक्तित्व वाला पुरुष चारों ओर से हजारों व्यक्तियों से घिरा हुआ विहार के निकट आया। सुदत्त ने भिक्षु-संघ के लिये विहार को तथागत के हाथों सविधि दान दिया।

भगवान बुद्ध ने ध्यान, योगाभ्यास तथा अन्य प्रकार उपयोगी जान इस विहार की भूरि-भूरि प्रसंशा की।

विहार दान का महात्म्य समाप्त हुआ। नौ महीने तक लगातार अनाथ पिण्डिक इस संघ-विहार का दिव्य पूजन कराता रहा। अब इस विहार में नित्य हजारों व्यक्तियों को शिक्षादान दिया जाता। अन्धकार

से प्रकाश में लाये जाने वाले दिव्य उपदेश दिये जाते। कई हज़ार भिक्षु भिक्षुणियों का यह आवास स्थल बना। स्वयं भगवान बुद्ध को यह स्थान अत्यन्त प्रिय था। उन्होंने यहाँ लगभग २५ चातुर्मास्य बिताये। यहीं उच्च शिक्षा दी। शास्त्र का गहन प्रतिपाद्य निचोड़ भिक्षुओं को सुनाया। उनकी गौरवमयी वाणी का संकलन त्रिपटिक में धरा पड़ा है।

महाराज प्रसेनजित के योग्य श्रेष्ठी की पुत्र वधु विशाखा अपने समय की मान्य स्त्री रत्नों में एक थी। इसके पिता धनञ्जय थे। उसके पति का नाम पूर्ण वर्धन था। इस महिला ने एक अत्यन्त सुरम्य विहार गौतम के निमित्त बनवाया था; जो श्रावस्ती में था। यह पूर्वाराम अथवा विशाखाराम के नाम से विख्यात था। गौतम इस रमणी के आराध्य देव थे। सर्वदा यह गौतम के आश्रम में शिक्षा तथा सदुपदेश ग्रहण करने के निमित्त जाती।

विशाखा ने एक दिन गौतम को अपने आवास पर ससंघ भोजन के लिये आमन्त्रित किया। दिव्य भोजन सादर अपने हाथों अर्पित कर विशाखा ने गौतम को प्रसन्न किया। अन्त में जब भगवान गौतम सदुपदेश दे चुके तो विशाखा ने प्रिय शब्दों में कहा—"देव मुझ अकिं-चन को कुछ मांगने पर मिल सकता है।" बुद्ध ने कहा—"आर्ये! हम बुद्ध वरदान से विलग हैं।" अपने तुच्छ विचार से विशाखा ने पुनः सविनय निवेदन किया—"आर्य मैं रखना चाहती हूँ। यदि आपको मान्य हो तो उन्हें आप करें, अन्यथा मेरी धृष्टता के लिये मुझे क्षमा करें।"

बुद्ध देव की आज्ञा पा विशाखा ने निवेदन किया—मैं आप से कुछ बातें शुद्ध और सात्विक हृदय से संघ के सम्बन्ध में कहूँगी।

१—"जब सघन कजरारे मेघ नीलगगन में से बरसते हैं उस समय हमारे संघ के सभी भिक्षु गण नग्नकाय रह कर शीत और कष्टों को सहते हैं। उन्हें शारीरिक कष्ट का अनुभव होता है। दर्शकों के हृदय में उनको देख ग्लानि उत्पन्न होती है। मैं चाहती हूँ कि सब के भिक्षु और भिक्षुणियों के लिये वस्त्र मैं अपनी ओर से दे सकूँ।

२—इस संघ में भिक्षुगण जो नये बाहरी आते हैं वे भिक्षाटन करना नहीं जानते। उन्हें इधर-उधर भटकना पड़ता है। उन्हें मैं भोजनदान देना चाहती हूँ। साथ ही जिन भिक्षुओं को बाहर आना-जाना पड़ता है, वे प्रायः पिछड़ जाते हैं। अतः मैं उन्हें भी भिक्षा-दान देना अपना कर्तव्य समझती हूँ।

३—रोगी भिक्षुगण सर्वदा दुःखी रहते हैं। उनके पथ्य और भोजन एवं औषधि का भार मैं अपने ऊपर स्वयं लेना चाहूँगी। उनकी सुश्रूषा जो भिक्षु करते हैं, उन्हें मधुकरी के निमित्त जाने का समय नहीं रह जाता। अतः मैं चाहती हूँ कि उन्हें भोजन अपनी ओर से दूँ।"

भगवान ने कहा,—"इससे तुम्हें क्या लाभ होगा।"

विशाखा विनम्र भाव से बोली—"देव इस प्रकार जिन भिक्षुगणों का जीवन यापित होगा, जो हमारे इस संघ में रह गये होंगे, उनकी मृत्यु-परांत उनका पावन पुण्यात्मा शरीर जब स्वर्ग में जायगा, उनकी सुकृति का वह शासन गाया जायेगा तो मुझे इस बात से प्रसन्नता होगी कि वह भिक्षु मेरे द्वारा प्रदत्त भोजन, वस्त्र, आवास में रह कर इस प्रकार पुण्य यश का भागी हुआ है, तब मुझे अलौकिक आनन्द प्राप्त होगा। मेरा चित्त प्रमुदित होगा। पुनः प्रीति उत्पत्ति के कारण मेरी आत्मा प्रसन्न होगी। आत्मा प्रसन्न होने से मैं मोक्ष प्राप्त कर सकूँगी।"

गौतम ने विशाखा को शिक्षा देते हुए कहा—"जो कृपण नहीं है! शोक रहित है। खुले हृदय से सबका स्वागत करती है। वही निर्मल और दिव्य भाग को प्राप्त करेगी। निर्दोष होगी और दिव्य बल धारिणी सिंह वाहिनी दुर्गा! वह पुण्य की इच्छा से चिर काल तक निरोग हो प्रमोद करेगी।"

भगवान की इस वाणी को सुन उसके अन्तर्चक्षु खुल गये। वह उस पद को प्राप्त हुई जिसकी कभी कल्पना तक न की थी। पुनः उसने गौतम से मंदवाणी में कहा—"नवयुवती भिक्षुणियां जो संघ में हुए नग्न स्नान करती हैं, जिसके कारण नीच वंशीय स्त्रियां उनकी हंसी उड़ाती हैं। उनपर बोली बोलती हैं। अनेक भ्रष्ट-भ्रष्ट अश्लील ताने देती हैं। मेरी प्रार्थना मान भिक्षुणियों का नग्न स्नान बन्द करा दें, देव।"

भगवान बुद्ध ने यह बात मान ली!

मैंने कहा—"यही भगवान गौतम के कपिल वस्तु के पुर्नगमन के बाद की संक्षेप में कहानी है।"

चाइ तू शुंग और शिग यू नाई मेरी बातें सुनकर प्रसन्न हो रहे थे।

शिग यू नाई ने कहा—"अभी कितना समय है। हमें यहाँ से नौ बजे चला जाना है।"

मैंने घड़ी की ओर दृष्टि दौड़ाई। अभी साढ़े आठ बजा था। मैंने कहा—"अब आगे थोड़ी देर में गौतम की शालीनता महत्ता तथा उपदेश के प्रभाव के सम्बन्ध में मैं थोड़े में आपको बता दूँ। तब आप लोग जायँ।"

उन्हों ने कहा—"अभी तो काफी समय है।"

पुनः मेरी बातें सुनने के लिये वे मुझे बाध्य करने लगे।

——

महापरिनिर्वाण

मैंने आगे कहना प्रारम्भ किया। उन्हें जाने की जल्दी लगी थी। मैं भी प्रमुख घटनायें जल्दी-जल्दी सुनाता चला जा रहा था। मैंने अंगुलिमाल की कहानी प्रारम्भ की। मैं कह रहा था, "श्रावस्ती के महाराज प्रसेनजित के कुल पुरोहित को एक पुत्र रत्न की प्राप्ति हुई। जन्म से ही यह बालक क्रूर, नृशंस राक्षसी स्वभाव का था। उसको किसी की हत्या करने में जरा भी भय का अनुभव नहीं होता था। बड़े होने पर अपनी तन्त्र विद्या की साधना के लिए वह हिंसक वन लोगों की तर्जनी उँगली काट-काट कर एकत्र करता और अपने राक्षसी कण्ठ में उसकी माला बना कर पहना करता। इसके अंगुलिमाल नाम पड़ने का प्रमुख कारण यही था। उसके भय से सम्पूर्ण प्राणी दुःखी थे। महाराज का वह घोर शत्रु था। उसका हिंसक साम्राज्य चारों ओर विस्तरित हो रहा था। जनता भय से आतंकित हो घर से बाहर न निकलती। गौतम बुद्ध अपना चौद-हवाँ चातुर्मास्य बिताने के लिए उन दिनों श्रावस्ती नगरी में ही पधारे थे।

एक दिन गौतम बुद्ध भिक्षाटन के निमित्त श्रावस्ती-कानन से होकर गाँव को जा रहे थे। उन्होंने एक विकराल काल समान निशाचर रूप

देखा। उँगलियों की माला कंठ में डाले एक पशु समान मनुष्य उत्पात कर रहा था। किसी युवक को पकड़ उसकी तर्जनी काटने की तैयारी में वह उसे भय-भीत कर रह था। इसी बीच एक भिक्षु को जाते देख अंगुलिमाल बोला—

"ओ अभागे सन्यासी! वहीं खड़ा रह। तुझे मेरा भय नहीं। निर्भीकता तू कहाँ चला जा रहा है। ठहर अभी तुझे इसका उचित परिणाम देता हूँ।"

गौतम चले जा रहे थे। उन्होंने कहा—मैं ठहरा हूँ, पर उनके पग-गति मान थे।

पुनः अंगुलिमाल ने कहा—"तू झूठ बोलता है। खल!"

उन्होंने कहा, "मेरी बात पर विचार करो अंगुलिमाल! एकमात्र इस युग में मैं ही अपने स्थान पर अचल हूँ। मेरी कामनायें सबसे कम और सीमित हैं। संसार गतिशील है। वह नाश की ओर अग्रसर है। उसमें तुम सबसे अधिक चलायमान हो, मैं बुद्ध हूँ।"

प्रबुद्ध बुद्ध की इस अलौकिक वाणी ने अंगुलिमाल को मानव बनाया। भगवान गौतम की इस वाणी ने उसके जीवन को परिवर्तित कर दिया। उसे अपने किये गये कार्यों पर पश्चात्ताप हो रहा था। वह सम्बुद्ध गौतम के चरणों पर गिर पड़ा। गौतम ने उसे संघ में लाकर शिक्षा दी। दूसरे ही दिन से वह इतना बड़ा विद्वान और ज्ञानी निकला कि गौतम ने उसे लोगों को शिक्षा देने के लिए नियुक्त कर दिया।

दूसरे दिन महाराज स्वंयम् अंगुलिमाल को पकड़ने के लिए भगवान से उपाय पूछने के निमित्त आये। उन्होंने कहा—दैव अङ्गुलिमाल से आप ही राज-पुत्रों का शोक हर सकते हैं। उसे कैसे पकड़ा जा सकता है।"

तथागत ने एक ओर संकेत करते हुए कहा—"राजन्! वह देखो कौन बैठा है। अङ्गुलिमाल को कल ही हमने ज्ञान और दीक्षा की रज्जु से आबद्ध कर इस पवित्र संघ रूपी कारागार में डाल दिया है।"

महाराज प्रसेनजित को अपनी आँखों पर विश्वास न हो रहा था। कल का राक्षस और आज ज्ञान गुरु। उन्होंने स्पष्ट देखा। राज्य के आये हजारों नागरिकों को अङ्गुलिमाल दीक्षा दान दे रहा था। एक दिन में यह परिवर्तन! महाराज को विश्वास न था, पर उनके कानों को सुनाई पड़ रहा था—अङ्गुलिमाल लोगों से बुद्ध की शरण में आने की प्रार्थना कर रहा था।

अङ्गुलिमाल—बुद्धं शरणं गच्छामि
जनता—बुद्धं शरणं गच्छामि
अङ्गुलिमाल—धम्मं शरणं गच्छामि
जनता—धम्मं शरणं गच्छामि
अङ्गुलिमाल—संघं शरणं गच्छामि
जनता—संघं शरणंगच्छामि!

इस प्रकार वह राक्षस दीक्षक गुरु के रूप में सबके सामने आया।

मैंने आगे दूसरी घटना सुनाते हुए कहा—"वाटिका और कुञ्जों के सभी पुष्प गिर चुके थे। शरद ऋतु का मौसम था! सभी पुष्प रहित वृक्ष उदास निर्जीव की तरह खड़े थे। सूर्य की रश्मियाँ निकल चुकी थीं। सरोवर का कमल खिल उठा। उसकी प्रत्येक पंखुड़ियाँ विहँस रही थी। खिले-पुष्प को देख सुदास का मन भी आनन्द से खिल उठता।"

हृदय में प्रसन्नता की एक रेखा दौड़ गयी। वह सोचने लगा, "आज महाराज को इस नील कमल की सुवासित सुगन्ध और कोमलता से

प्रसन्न कर मुँह माँगा पुरस्कार प्राप्त करूँगा क्योंकि अनेक दिवसों के बाद आज महाराज इतने सुवासित नील कमल का दर्शन कर पायेंगे।"

संजोकर, मकरन्द कणों की रक्षा करता हुआ पुष्प को वह राज महल के सामने लाकर बैठ गया। महाराज आने ही वाले थे इतने में उधर से एक सेठ निकला। पुष्प की सुन्दरता और सुगन्धि से प्रसन्न हो सेठ बोल उठा "पुष्प बेचोगे? भगवान बुद्ध का आज शुभागमन हुआ है। क्या लोगे?"

सुदास सगर्व बोल उठा "एक स्वर्ण मुद्रा की आस से चला हूँ।"

सेठ ने स्वीकृति दे दी।

नगर के विशाल वट वृक्ष के नीचे भगवान बुद्ध आसन जमाये विराजमान हैं। राजा प्रसेनजित महा पुरुष के दर्शन के लिए वाद्य-संगीत के साथ मंगल गीत गाता हुआ निकल पड़ा।

सहस्र मकरंद कण वाले सुगन्धित पुष्प को देख राजा अत्यन्त हर्षित हुआ "क्या मूल्य लेगा?"

सुदास ने विनम्र शब्दों में उत्तर दिया "महाराज यह बिक चुका है।

राजा—"किस मूल्य पर।"

सुदास—"एक स्वर्ण मुद्रा पर।"

राजा "दस स्वर्ण मुद्रा मैं दूँगा।"

सेठ ने तपाक से कहा "मैं बीस दे सकता हूँ।"

इस छोटे से पुष्प का मूल्य देखते ही देखते हजारों स्वर्ण-मुद्रा में आँका जाने लगा। माली सुरदास के कंठ से निकल पड़ा—"महाराज और सेठजी अब क्षमा करें। यह पुष्प बेचने में मैं अपने को असमर्थ पा रहा हूँ।"

दोनों के हाथ निराशा लगी।

सुदास मन ही मन एक अपूर्व आनन्द की कल्पना करता हुआ बोधि वृक्ष की ओर बढ़ा चला जा रहा था। उसके पग गन्तव्य मार्ग की ओर अपने आप बढ़ते चले जा रहे थे।

भगवान् बुद्ध वृक्ष के नीचे पद्मासन लगा विराजमान थे। उनकी प्रतिभा की ज्योति सहस्त्र निशाकर को भी मात करती थी। ललाट पर आये स्वेद बिन्दु हीर-कण की भाँति चमक उठे।

श्रद्धानत हो माली सुदास ने अपनी इस छोटी सी भेंट को महापुरुष के पद-कमल के समीप रख दिया।

पुष्प की सुगंधि से वातावरण सुगंधिमय हो गया। दिशाएँ सुवासित हो गयीं। पक्षीगण कलरव गान करने लगे।

विहँसते हुए भगवान् बुद्ध ने नेत्र खोले "बोलो वत्स! क्या चाहते हो?"

सुदास ने अपने को कृत-कृत्य समझा। उसके मुख से बरबस ही निकल उठा" महाप्रभु के चरण रज की केवल कणिका"

यह अमूल्य नील कमल का प्रभाव था। सेठ और महाराज चमत्कृत हो देख रहे थे।

× × ×

एक दिन गौतम सुआसन पर विराजमान थे। कृष्णगौतमी नामक रमणी अपने सुपुत्र को लेकर आयी और बोली—"देव! मैं आपकी शरण में हूँ। मेरे पुत्र को किसी भी प्रकार आप जीवित कर दें। गौतम ने कहा—"देवि मैं अभी तुम्हारे पुत्र को जीवित कर दूँगा। तुम

किसी ऐसे घर से एक अंजलि सरसों माँग लाओ, जहाँ आज तक कोई न मरा हो।"

कृष्ण गौतमी घंटों बाद लौटकर गयी और चरणों पर गिरकर बोली- "मुझे ज्ञात हो गया देव! संसार में सभी जो उत्पन्न होते हैं, अवश्य विनष्ट होते हैं। किसी घर में मुझे एक कण भी सरसों न मिला।"

उसने अपने पुत्र की अन्त्येष्टि की। उसे ज्ञान हो गया"—मैंने यह कहानी सुनायी। यह किसी को ज्ञानदान देने का कितना सुन्दर उपाय था।

× × ×

आगे मैंने दूसरी कहानी बताते हुए कहा--"यह गौतम की हार्दिक शीलता और सरसता की एक कहानी है—"एक दिन किसी बौद्ध भिक्षु के पेट में तीव्र पीड़ा उत्पन्न हुई। संयोग से गौतम आनन्द सहित उधर से होकर निकले। वे भिक्षु को इस प्रकार पड़ा देख अत्यन्त दुःखी हुए। उन्हें ज्ञात हुआ कि इसका कोई भी परिचारक नहीं। उन्होंने आनन्द से जल मँगाया। उसको स्नान करा उसे आसन पर लिटाया। उसकी सविधि सुश्रुषा की। अन्य भिक्षुओं के मध्य तथागत ने कहा—"इस भिक्षु संघ में किसी के माता-पिता नहीं हैं। तुम्हारी सेवा कौन करेगा। तुम स्वयं एक दूसरे के सहायक बनो।" उस दिन से सभी भिक्षु एक दूसरे की सेवा करते।

मैंने आगे कहा--"किसी समय इतना बड़ा अकाल देश में पड़ा कि लोगों को भोजन को कौन कहे फल-फूल तक खाने को मिलना दूभर हो गया। भिक्षुगण भिक्षाटन करने जाते, पर कोई भी उस समय कुछ न

प्राप्त करता। सामान्य भिक्षा कहीं कहीं मिल जाती। स्वयं भगवान् थोड़े से चावल भिगोकर खाते।

एक दिन उन्हें ओखली की आवाज़ सुनाई पड़ी। उन्होंने आनन्द से कारण पूछा—आनन्द ने बताया "देव! भिक्षुगण भिक्षा में मिले मोटे चावल जिनमें धान हैं, उन्हें मूसल से कूटकर साफ कर रहे हैं। पुनः उसे भिगोकर ये खायेंगे।"

गौतम ने कहा—"आनन्द! हमारी आगामी पीढ़ी के लिये तब तो दिव्य मिष्ट और स्वादिष्ट भोजन की आवश्यकता होगी। हमारे भिक्षु अर्थः से यदि भोजन करेंगे तो भूखों कैसे रह सकते हैं।"

कहा जाता है कि इसके बाद सभी भिक्षु सर्वदा उसी पर संतोष रखते जो कुछ जितना उन्हें मिलता।

\+ + +

"बुद्धदेव के शालीनता की एक कहानी केवल और मैं आपको सुनाऊँगा।" मैंने आगे कहने लगा। दोनों बौद्ध भिक्षुओं को इन कथाओं के सुनने में आनन्द आ रहा था।

मैं कहने लगा—"सिद्धार्थ और देवदत्त की बचपन से ही पटती न थी। हंस की कहानी मैंने आपको शुरू में बता दी थी। यह वही देवदत्त था। उन्होंने बुद्ध के सदुपदेशों को ग्रहण कर लिया था तथा परिव्राजक भी बन गये थे। पर हार्दिक द्वेष गौतम के प्रति अन्त तक उसके हृदय में बना रहा। वह चाहता था कि गौतम को नीचा दिखाकर मैं यश और सम्मान अर्जित करूँ।

उसने गौतम के संघ की अनेक प्रकार से भर्त्सना की। उनके नियमों शिक्षाओं और संघ का बिलकुल भ्रष्ट सिद्ध करने

के लिए अपनी पूरी ताकत लगा दी। पर सच्ची बात सर्वदा व्यक्त होकर रहती है। देवदत्त गौतम के द्वेष के कारण राजगृह नरेश बिम्बसार के पुत्र अजातशत्रु के पास जाकर रहने लगे। यहीं बुद्ध भगवान भी अधिकतर अपना चतुर्मास्य बिताया करते। यह नगरी उन्हें अत्यन्त प्रिय थी। देवदत्त ने एक नवीन संप्रदाय का निर्माण भी किया। उनके लिये संघाराम निर्मित्त कराया गया। उनके धर्म के माननेवाले कुछ शिष्य भी हुए। गौतम से उन्होंने आज्ञा लेकर अपने धर्म की विशिष्टता लोगों से स्वीकृत करानी चाही। पर गौतम ने कदापि भी यह आदेश न दिया क्योंकि उन्होंने जो कुछ तथ्य निकाले थे, सब कपोल कल्पित कल्पना मात्र थे। देवदत्त इससे जलभुन गया। हर प्रकार से उसने गौतम की बुराई प्रारम्भ की।

वह गौतम का विरोधी बन बैठा। उसके धर्म को निःसार कहना संघ और भिक्षुओं को खूब खरी खोटी सुनानी प्रारम्भ की। गौतम से लोग उसकी बुराई करते। पर वे कहते—"सभी पर आरोप किये जाते हैं। मेरी भी बुराई देखी जा रही है। देवदत्त जब राग और द्वेषरहित हो जायगा तो स्वयं वह मेरी बातें समझ जायगा।"

देवदत्त का मानसिक अधःपतन हो चुका था। उसकी ही प्रेरणा से ही अजातशत्रु ने अपने पिता महाराज बिम्बसार को बन्दी बना अनेक कष्ट केवल तुच्छ राज्य लिप्सा के कारण दिये। बुद्ध के प्रति उसके हृदय में अब जो अग्नि प्रज्वलित हो रही थी, उसे शांत करने के लिये वह बुद्ध के जीवन को नष्ट करने पर आ उतरा। उसने बुद्ध को मरवा डालने का निश्चय किया। पर जब मारनेवाले बुद्ध के पास पहुँचते, उनका अस्त्र उठता ही न था। उनके हाथ मन मन भर के हो गये। भगवान की दीक्षा

ग्रहण कर के भिक्षु बन उनके आश्रम में रहने लगे। देवदत्त ने स्वयं गौतम पर आक्रमण किया। पहाड़ों पर से ऊँचे-ऊँचे पत्थर उनके ऊपर गिराये गये। उन्हें चोट भी आयी। पर सब ठीक हो गया। कोई उनका कुछ बिगाड़ न सका।

वृद्धावस्था आयी। देवदत्त की चेतना अब नए मोड़ पर पहुँची। उसका द्वेष बुद्ध के प्रति शांत हो चुका था। अब उनका राग श्रद्धा में परिणित हो गया था। अंतिम समय वह भगवान के दर्शन के लिये अपने शिष्यों सहित पालकी में सवार हो चला। पर मार्ग में ही उसका देहावसान हो गया। वह प्रबुद्ध बुद्ध के पावन चरणों का दर्शन भी न कर पाया कि चल बसा। बुद्ध ने कदापि भी उसका बुरा न चाहा। वे सब सहते रहे। अन्त में उसकी मृत्यु का समाचार उनके लिये दुःख-दायी भी हुआ।"

वे बौद्ध भिक्षु मेरी बातें सुन रहे थे। मैंने आगे बुद्ध के अन्तिम जीवन की संक्षेप में कहानी सुनाने के पूर्व उनसे कहा, "यह है गौतम की शालीनता, सहनशीलता, उत्कृष्टता, महत्ता और शालीनता के कुछ उदाहरण। मैंने उनकी आज्ञा पा आगे की कहानी कहना प्रारम्भ किया।

— —

परिनिर्वाण

मैं आगे प्रबुद्ध बुद्ध की कहानी सुनाने लगा। यह उनके अन्तिम जीवन की कहानी थी। शिंग यू नाई तथा चाई नू शुंग मेरी बातें सुन रहे थे।

मैं कह रहा था—"पच्चीस चातुर्मास्य श्रावस्ती में बिताकर गौतम बुद्ध विचरण करते हुए ससंघ पावा (पडरौना) में आये। वहाँ पर चुन्द नामक एक लुहार रहता था। वह यहाँ का मान्य व्यक्ति था। उसके आग्रह पर गौतम बुद्ध अपने भिक्षुओं सहित उसके यहाँ भोजन करने के लिये पधारे। चुन्द ने विविध पक्व सुअन्न तथागत को सप्रेम खिलाये। भोजन में सूकर के मांस का भी एक भोज्य पदार्थ बनाया गया था। यह शूकर माँस निर्मित पदार्थ केवल तथागत को ही उनके आदेशानुसार परसा गया था। क्योंकि तथागत को छोड़कर अन्य कोई भी व्यक्ति उसे पचा सकने में असमर्थ था। अवशिष्ट पदार्थ आंगन में चुन्द ने बुद्ध की आज्ञा से गाड़ दिया। यह भोजन गौतम का अन्तिम भोजन था। इसके बाद से उनका स्वास्थ्य बिगड़ता गया।

अब बुद्ध देव इस स्थान को त्याग आगे बढ़े। वे कुशीनगर पहुँच चुके थे। मार्ग में उन्हें अनेक कष्ट हुए। उनका रोग बढ़ता ही गया। पेट में मरोड़ उत्पन्न हुआ। आँव के रोग से वे बुरी तरह परेशान थे। मार्ग में वे कुकुत्था नदी के किनारे एक आम्र वन में रुके। यह आम्र वन चुन्द का ही था। उन्होंने सोचा यदि मैंने निर्वाण ग्रहण किया तो चुन्द को ही दुःख होगा और लोग उसे इस बात का कलंक देंगे कि इसके ही यहां के भोजन से गौतम की मृत्यु हुई। उन्होंने चुन्द को इस बाग में बुलवाकर कहा भी कि तथागत मृत्यु और जन्म के समय जिसके यहां भोजन करते हैं, वह अत्यन्त भाग्यशाली होता है। जो आमन्त्रण देता है, वह पुण्य प्राप्त करता है। चुन्द को इस बात से संतोष लाभ हुआ।

कुशीनगर आकर गौतम तीव्र वेदना से आक्रान्त हो एक सुआसन पर शाल वृक्ष के नीचे उत्तर ओर सिर कर लेट गये। कौन जानता था कि गौतम अन्तिम बार लेट रहे हैं। सदा के लिये सत्य और अहिंसा की आत्मा इस संसार को त्याग कर जा रही है।

भगवान बुद्ध ने आनन्द को आदेश दिया कि यदि तुम कुछ पूछना चाहते हो तो पूछ सकते हो। आनन्द ने कुछ प्रश्न किये। गौतम ने उनका व्याख्यात्मक उत्तर दिया। आनन्द ने पूछा कि हम स्त्रियों के साथ कैसा व्यवहार करें। गौतम बुद्ध ने उनकी ओर न देखने का आदेश दिया। "यदि स्त्रियों पर दृष्टि पड़ जाय तो क्या करें।" आनन्द ने पुनः पूछा। "उनसे बात ही मत करो" महात्मा बुद्ध ने उत्तर दिया। "यदि वे बोलने के लिये बाध्य करें तब।" अन्तिम बार आनन्द ने पूछा। तथागत ने उत्तर देते हुए कहा " आकर्षण में न फँसकर जाग्रत

रहना चाहिये।" बुद्ध ने अपने सबसे प्रिय अनुयायी आनन्द को बताया कि अब मैं निर्वाण ग्रहण करने जा रहा हूं। इस संसार का परित्याग मैं करूँगा।

आनन्द अत्यन्त दुःखी हो बिलख-बिलख कर बालकों की भांति रोने लगा। पर साहस कर कठोर हृदये से उसने पूछा—"देव!—आपका अन्तिम संस्कार किस विधि सम्पन्न हो।"

तथागत ने कहा—"मेरा अन्तिम संस्कार करने के लिए तुम लोगों को चिंतित होने की आवश्यकता नहीं। आसपास के गृहस्थ मेरे निर्वाणोपरांत मेरा उचित अंतिम संस्कार करेंगे।"

"पर देव! हम तो हैं ही" आनन्द ने रो कर कहा।

"तो राजराजेश्वरों सम्राट की भाँति तुम मेरा अंतिम संस्कार करो।" तथागत ने कह मौन धारण कर लिया।

तथागत का अन्तिम समय अत्यन्त निकट आया देख आनन्द दुःख से विह्वल हो गया। बिलखने लगा। उसको बिलखता देख अन्य भिक्षु भी द्रवीभूत हुए बिना न रह सके।

गौतम ने उन्हें सान्त्वना देते हुए कहा, "प्रियजन का त्याग यद्यपि कष्ट कर है, फिर भी यह तो सर्वसिद्ध है कि जो पैदा हुआ है वह अवश्य मरेगा। नाशवान यह जगत है। मैं भी जगत का ही एक प्राणी हूँ। मैं समय समय पर सर्वदा अवतरित होता रहता हूँ। अनेक बार बुद्ध के रूप में मैंने पृथ्वी पर जन्म ग्रहण किया है। यह मेरा अन्तिम जन्म नहीं है। जब-जब संसार पर विपत्ति आयेगी, मैं उचित समय—अवस्था देख अवश्य अवतरित होता रहूँगा। आप भिक्षु गण भी शांति दायक

संदेशों को अपने पथ का दीपक बना उसे प्रज्वलित कर अपने मार्ग पर बढ़ते रहें। मैं पुनः मैत्रेय के रूप में एक बार धरती पर अवतरित हूँगा। यदि किसी भी भिक्षु को कोई शंका हो, किसी बात को पूछना हो वह निःसंकोच होकर कहे।"

दुःख में सभी विह्वल थे। पर डूबती नौका को किनारा मिला। लोगों को बुद्ध की सान्त्वना से शांति मिली। पर कोई कुछ बोल न सका। इस अवसर पर बुद्धदेव के मरणासन्न होने का समाचार पाकर मल्ल नरेश तथा अन्य नरेश गण भी दर्शन के लिए पधारे थे। उन्होंने गौतम का चरण स्पर्श किया। सब प्रकार से लोगों को दुःखी देख बुद्ध ने शरीर त्याग के पहले अन्तिम वाक्य कहा।

बुद्ध देव ने अपना अन्तिम संदेश देते हुए कहा—"संसार के साथ नाश का सम्बन्ध है। इस नाश से बच युक्ति पूर्वक सपरिश्रम अपनी मुक्ति का मार्ग प्राप्त करना आवश्यक है।"

अब क्रमशः बुद्धदेव के अंग शिथिल होने लगे। समाधिस्थ हो वे अस्सी वर्ष की अवस्था में निर्वाण को प्राप्त हुए। मल्ल नरेशों ने उनके मृत्योपरांत सात दिन तक लगातार युग-प्रथानुसार नृत्य गान किया।

आज संसार के ज्योतिस्तंभ का तिरोधान हो गया। शांति के एक ऐसे महापवित्र मानव का विनाश जो कदापि भी पुनः आज तक उत्पन्न न हुआ, पर उसके द्वारा जलाया गया दीप युग-युग तक अपनी ज्योति बिखेरता रहेगा क्योंकि दीप से ही दीप जलता जाता है। उसके संदेश लोगों की आत्मा को पवित्र करते रहेंगे।

भगवान् बुद्ध का अन्तिम संस्कार आठवें दिन हुआ। इस अवसर पर देश-देश के अनेक भूपति, ऋषि, भिक्षु सभी ने पूर्ण रूप से भाग लिया।

उनकी अस्थि को आठ भागों में विभक्त किया गया। उसको देश के प्रमुख आठ भागों में बाँटा गया।

(१) अजातशत्रु (मगधनरेश) (२) लिच्छिवि (वैशाली) (३) शाक्य (कपिलवस्तु) (४) बुलिय (अलउकप्प) (५) मल्ल (पावा) (६) मल्ल (कुशीनगर) (७) कोलिय (रामग्राम) (८) ब्राह्मण गण (वेठद्वीप)

द्रोण नामक ब्राह्मण ने इन अस्थियों का वितरण किया था। फूटे घड़े को ही प्राप्त कर उसने अपने मन को स्वान्तना दी। उन अस्थियों पर बड़े-बड़े आठ उच्च स्तूप उनके प्राप्त कर्ता गण ने बनाये।"

मैंने भगवान् बुद्ध के निर्वाण की कहानी उन्हें सुनायी। मेरा कंठ भर आया था। उनके नयनों से नीर की बूँदें टपक रही थीं। वे विह्वल हो गये थे। रुँधे गले से शिगयूनाई बोला—"भगवान् की शिक्षा का कुछ ज्ञान आप हमें बता दें।"

बहुजन हिताय, बहुजन सुखाय,

मैंने बुद्ध की प्रमुख धर्म-सूक्तियां से उन्हें परिचित कराया। मैं कह रहा था—"जीवन भर सफल साधना के उपरांत प्राप्त भगवान बुद्ध के ज्ञान का महान स्तम्भ जिन प्रमुख भित्तियों पर आधारित था, वह उनकी दीक्षा थी। आत्म साक्षात्कार करानेवाली महान दीक्षाओं के बलपर उन्होंने संसार को जीता, तथागत की वाणी का अवर्णनीय प्रसाद बौद्ध धर्म आज एशिया के कोटि-कोटि मानस मन्दिरों में अपनी आलोकमयी सुनहरी किरणें बिखेर रहा है। उसकी ज्योत्स्नातमकी कालिमा का शमन कर रही है। शांति का अमर संदेश मुखरित कर रही है। आज भारतीय गण तन्त्र के गौरव पं० नेहरू पुनः बुद्ध को पचशील संदेश जगत् के सन्मुख रख सम्पूर्ण संसार को भारतीय परिव्राजक के धर्मराज की प्रजा होने के लिए आमंत्रित कर रहे हैं। वह दिन दूर नहीं, जब सम्पूर्ण संसार पुनः परिव्राजक की शरण में आयेगा। वह एक अनन्त विस्तृत धर्म राज्य की प्रजा होगा। भारत से आलोक प्राप्त करेगा।

तब तथागत के यह उपदेश उसका मार्ग दर्शन करेंगे—

1. प्रकाश प्राप्त करने के लिए दीपक स्वयं बनो। अपनी शरण को ही शरण समझो। आलोक प्रकाश की तरह सत्य आश्रयी बनो।

२. आनन्द रूपी स्वर्ण कारागार, जहाँ हृदय बंदी रहता है, मनुष्य मात्र की मुक्तिके लिए मुक्त कर दो।

३, क्रोध पर कृपा से और बुराई पर भलाई से विजय प्राप्त करो।

४. में घृणा का दमन घृणा से नहीं होता। प्रेम से ही घृणा का अन्त हो सकता है।

५. दुःख का समूल नाश करने के लिए ब्रह्मचर्य का पालन करो।

६. मनसा-वाचा-कर्मणा किसी को सताओ मत सबकी भलाई में रत रहो, प्रसन्न रहो।

७. आकाश में, समुद्र में या पर्वतों की खोह में ऐसा कोई ठौर नहीं है, जहाँ पापी अपने पाप छिपा सके।

८. दूसरों का छिद्र न देखकर अपने छिद्र देखो।

९. जिस प्रकार हवा में धूल उड़ाने से वह अपने ही ऊपर गिरती है, उसी प्रकार अपने कुकर्म अपने लिए ही कष्टदायक होते हैं।

१०. स्वास्थ्य सबसे अच्छा वरदान है। संतोष सब से कीमती धन है। सच्चा मित्र सबसे बड़ा आत्मीय है, निर्वाण प्राप्ति उच्चतम आनन्द है।

११. दुर्वचन बोल कर मनुष्य अपना खुद नाश करता है।

१२. कर्म सबसे बड़ा धन है। यही ही पैतृक सम्पत्ति है।

१३. असफलता और आपत्तियों से अविचलित रहनेवाला पुरुष ही बुद्धिमान है। ऐसा मनुष्य अपने मन में विकार नहीं आने देता।

१४. समस्त प्रपंचों का मूल अहंकार है। अहंकार के समूल नाश से ही अन्तःकरण की तृष्णाओं का अन्त होता है।

१५. सौ वर्ष के आलसी और हीनवीर्य जीवन की अपेक्षा एक दिन का दृढ़ कर्ममय जीवन कहीं अच्छा।

१६. कर्त्तव्य का पालन पूरी शक्ति और प्रयत्न पूर्वक करना चाहिये।

यह बुद्धोपदेश सुनकर बौद्ध भिक्षु प्रसन्न हो रहे थे। घड़ी की ओर मैंने दृष्टि उठाई। नौ बज रहा था।

मैंने कहा—"कहिये! आप लोगों को मेरे कारण देर तो नहीं हो रही है?"

शिंग यू नाई ने कहा—"हम लोग आसानी से वहाँ पहुँच जायगा। वहाँ भाग ले सकेगा। आप ने हमको पूरा कहानी सुनाया, अच्छी तरह हम आपका बात समझ सका। इसके लिये हम आपको धन्यवाद करता है। हमको अब आप आज्ञा दें। बाहर से लौटकर आयेगा, तब हम आपका फिर दर्शन करेगा। आपको बड़ा कष्ट हुआ।"

मैंने कहा—"आप लोगों की मैं अच्छी तरह सेवा न कर सका। पूरी कहानी मैं जल्दी में कह गया। पुनः आप लोग आयेंगे तो ····

इसी बीच पद्माकर आकर बोला—"बापू जी, नौ बद गया। कालेज कब जायेगा।"

मैंने कहा—"ऊपर चलो मैं आरहा हूँ।"

मैं उन्हें पहुँचाने सड़क तक आया। वे अनेक प्रकार से मेरी तारीफ कर रहे थे। मुझे इस बात की प्रसन्नता थी कि दो विदेशी व्यक्तियों को मैं भगवान के सम्बन्ध में कुछ सुना सका। उनका अभिवादन कर, मोटर में बैठ घर आया। उन्होंने मेरा पता ले लिया था।

जाते समय उन बौद्ध भिक्षुओं की सहृदय मूर्ति, भावुक आखें

जिनसे कृतज्ञता स्पष्ट झलक रही थी, मेरे हृदय में अपना अपूर्व स्थान सर्वदा के लिए बना गयीं थी।

घर आया। कालेज जाने की जल्दी थी। शीघ्र तैयार हो उस दिन मैं कालेज चला गया।

\+ \+ \+

महीनों बीत गये। एक दिन अपने मित्र गोपेश के साथ बैठा मैं इधर-उधर की गप्प लड़ा रहा था। किसी तरह समय काटना था। इसी बीच डाकिया डाक दे गया। डाक में मुझे एक पत्र मिला, जिस पर विदेश की मुहर थी—

वर्मा

१७।७।५६

आदरनीय महाशय,

जयहिन्द ।

आपका पास से चल कर हम लुंबिनी पहुँचा। वहाँ से हमने आपका पास आने वादा किया। पर हमको जल्दी का काम आ गया। हम आप से न मिल सका। हमको आप क्षमा करेगा। हम आपका बताया बात समरन कर तथा आपका दिया किताब पढ़ रहा है। हम भगवान बुद्ध का जीवनी अपनी भाषा में लिखेगा।

हम आपका भासा का प्रचार यहाँ कैसे करें आप हमको बतायेगा। आपका दोनों बच्चा दिवाकर, पद्माकर अच्छा होयेगा। आप अच्छा होगा।

हम पत्र का आशा में है। आप जरूर-जरूर पत्र देगा।

आपका

शिंग यूनाई

ताई चूशुंग